ज्ञानमण्डल ग्रन्थमालाका पन्द्रहवां ग्रन्थ।

सारनाथका इतिहास।

लेखक—

श्री वृन्दावन भट्टाचार्य।

एम. ए. एम. आर. एस. जी. एस. (एडिनवरा)

प्रोफेसर बनारस हिन्दू विश्वविद्यालय।

श्री काशी

ज्ञानमण्डल कार्यालय

१९७९

प्रथम संस्करण १५००] [मूल्य अजिल्दका १)

प्रकाशक—
श्रीमुकुन्दीलाल श्रीवास्तव
व्यवस्थापक
ज्ञानमण्डल कार्यालय काशी ॥

लागत व्यय ।

छपाई	१८१)
कागज	३००)
कटाई इ०	३०)
	६०)
संपादन संशोधन इ०	२००)
पुरस्कार	२३६)
	१०१०
हानि, भेंट इत्यादि	४५०)
कमीशन	४५०)
	१९१०)
∴ एक प्रति अजिल्दका मूल्य	१।)

मुद्रक—
महतावराय,
ज्ञानमण्डल यन्त्रालय,
काशी ।

सारनाथका इतिहास ।

विषय-सूची

प्रथम अध्याय

द्वितीय अध्याय

तृतीय अध्याय

चतुर्थ अध्याय

पञ्चम अध्याय

षष्ठ अध्याय

सप्तम अध्याय

सारनाथकी वर्त्तमान अवस्था ।

परिशिष्ट (क)—

परिशिष्ट (ख)—

चित्र-सूची ।

पृष्ठ

मूल पुस्तककी भूमिका

(महामहोपाध्याय डाक्टर श्रीयुत सतीशचन्द्र
विद्याभूषण लिखित)

अध्यापक श्री वृन्दावन भट्टाचार्य लिखित "सारनाथका इतिहास" प्रकाशित हो गया। इसमें बौद्धगणोंके चारों महातीर्थोंमें प्रधान तीर्थ (सारनाथ)का इतिहास शुरूसे लिखा गया है। कपिलवस्तु, बुद्धगया तथा कुशीनगर—ये स्थान बौद्ध इतिहासमें, विविध रूपसे प्रसिद्धि लाभ कर चुके हैं। सारनाथकी प्रसिद्धि इन तीनों स्थानोंकी अपेक्षा किसी प्रकार कम नहीं है। पालिग्रन्थोंमें सारनाथका परिचय मिगदाव या इसिपतनके नामसे दिया गया है। इसी स्थानमें बुद्धदेवने सर्व प्रथम धर्म-चक्र-प्रवर्त्तन किया था। इसी मिगदाव (Deer Park में निवासकर उन्होंने पांच ब्राह्मण शिष्योंके सम्मुख अमृतद्वार (Immortality) का उद्घाटन किया था। दुःख, दुःखकी उत्पत्ति, दुःखका ध्वंस, और दुःख-ध्वंसका उपाय-इन चार महासत्योंकी यथार्थ व्याख्याकर उन्होंने इस लोकमें सम्यक् सम्बोधिका प्रचार किया। महाराज अशोकके अनुशासनस्तम्भ, राजा कनिष्कके समयकी बोधिसत्त्वमूर्त्ति एवं गुप्त राजाओंके समयकी धर्मचक्र-प्रवर्त्तननिरत विश्वोपकारक भावव्यंजक प्रतिमा इस समय भी भग्नावशेषरूपमें वर्त्तमान रहकर सारनाथके प्राचीन माहात्म्यको घोषित करती है। बौद्धतांत्रिक युगमें भी सारनाथका गौरव विलुप्त नहीं हुआ। उस समयकी आर्य भट्टारिका तारादेवी, मारीची प्रभृतिकी प्रतिकृति सारनाथकी विचित्र चित्रशालाको सुशोभित करती है।

इसी सारनाथमें महाराज अशोक और कनिष्कके समयकी अशोकलिपि, ईसाकी ४थी या ५वीं शताब्दीकी गुप्तलिपि एवं ११वीं शताब्दीकी देवनागरी

और वंगलिपि इस समय भी स्पष्टरूपसे उत्कीर्ण हैं। सारनाथके सुविशाल प्रान्तरमें इस समय भी जो भग्नप्रस्तर खण्ड हैं उन्हें देखनेसे हमें यही प्रतीत होता है कि ईसाके पूर्व ६०० वर्षसे ईसाकी बारहवीं शताब्दी पर्यन्त—प्राय: दो हजार वर्ष—मृगदाव भारतीय सभ्यताके परिमापक दण्डके रूपमें विद्यमान था।

वाराणसी वैदिक सभ्यताकी बड़ी प्राचीन भूमि है। उसके पार्श्वमें ही, वैदिक सभ्यताका आविर्भाव होनेपर दोनों प्रकारकी सभ्यताओंने पारस्परिक प्रतियोगितासे वृद्धि प्राप्त की। जिनने महायान सम्प्रदायके दार्शनिक ग्रन्थोंका पाठ किया है उन्होंने अवश्य देखा होगा कि दोनों सम्प्रदायोंके परस्पर संघर्षसे कितने ही महासत्योंका आविष्कार हुआ है। उद्योतकर, कुमारिल भट्ट, शंकराचार्य, उदयनाचार्य एवं जयन्त भट्टके ग्रन्थोंको पढ़कर कोई अपने मनमें यह न समझ ले कि केवल उन्हींने बौद्धगणोंपर निष्ठुरभावसे आक्रमण किया है प्रत्युत माध्यमिक सूत्र, लङ्कावतार सूत्र, अभिसमयालंकार सूत्र प्रभृति-बौद्धग्रन्थोंके देखनेसे विदित होता है कि बौद्ध ग्रन्थकारोंने ही सर्व प्रथम ब्राह्मणदर्शनमतके खण्डन करनेकी चेष्टा की है। दोनों सम्प्रदायोंके विरोध कालीन हजार वर्षके मध्यमें भारतमें जो उपादेय दार्शनिक तत्त्व प्रकाशित हुए हैं। संसारमें इस समय भी सर्वत्र उनकी आलोचना आदरके साथ होती है।

प्रस्तुत ग्रंथमें अध्यापक वृन्दावन चन्द्रने सारनाथका धारावाहिक इतिहास लिखा है। उन्होंने पालिग्रन्थ, उत्कीर्णलिपि प्रभृतिका सम्यक् अनुसन्धान कर बड़े परिश्रम और अध्यवसायसे इस ग्रन्थकी रचना की है। किस प्रकार सारनाथका ध्वंस हुआ, इसका भी विवरण इस ग्रन्थमें मिलता है। हमारी सदाशया ब्रिटिश सरकारने इस ध्वंसावशेषकी रक्षाके निमित्त जिस बृहत् चित्रशालाकी स्थापना की है उसका सम्पूर्ण विवरण इस ग्रन्थमें लिपिबद्ध हुआ है। ग्रन्थका विषय गौरव, विचार-नैपुण्य तथा भाषा-माधुर्य्य प्रशंसनीय है। इसका सर्वत्र समादर प्रार्थनीय है।

श्री सतीशचन्द्र विद्याभूषण।

ग्रन्थकारका वक्तव्य ।

जिस समय हमने मूल बंगला पुस्तक प्रकाशित की थी, उस समय अनेक भारतीय तथा यूरोपीय विद्वानोंने सहृदय-तापूर्वक उसका स्वागत करते हुए हम से यह अनुरोध किया कि हम उसका अंग्रेजी संस्करण भी प्रकाशित करें ताकि सारनाथके ऐतिहासिक तत्व जाननेके लिये समुत्सुक बहु—ख्यक पाठक उससे लाभ उठा सकें। उक्त अनुरोधको ानते हुए हमने यह भी उचित समझा कि भारतकी राष्ट्र-भाषा हिन्दीमें भी इसका प्रकाशन किया जाय। यही कारण है कि आज हम हिन्दी पाठकोंके सामने यह संस्करण उप-स्थित करते हैं। अंग्रेजी संस्करण भी शीघ्र ही प्रकाशित होगा। आशा है इन पृष्ठोंसे सुप्रसिद्ध ऐतिहासिक स्थान 'सारनाथ' के विषयमें पाठकोंको बहुत कुछ ज्ञान प्राप्त हो सकेगा और ऐतिहासिक तत्वोंकी ओर उनकी रुचि भी बढ़ सकेगी।

'सारनाथ' में खोदाईका काम अभी समाप्त नहीं हुआ है। जो नयी बातें मालूम होंगी, वे अन्य संस्करणमें जोड़ दी जायंगी। इस समय हमने केवल वहांके कौतुकालयका एवं खनन-कार्यका विवरण देना ही उचित समझा है।

कई स्थानोंपर पुरातत्व-विभागसे हमारा मतभेद है, किन्तु आशा है यह मत भेद सत्यके अनुसंधानमें बाधक न होकर साधक ही होगा। हमें पुरातत्व-विभागका कृतज्ञ होना चाहिये जिसकी कृपासे हमें सारनाथके सम्बन्धमें इतनी बातें मालूम हो सकीं।

प्रेसके भूतोंकी कृपासे छापेकी जो अशुद्धियां रह गयी हैं, उनके लिये हमें तथा प्रकाशकोंको दुःख है। आशा है पुरातत्वज्ञ विद्वान् इन छोटी-मोटी त्रुटियोंका ख्याल न करते हुए ऐतिहासिक तत्वोंपर ही दृष्टि रखेंगे।

अनुवादककी मातृभाषा हिन्दी न होनेके कारण अनुवाद पूर्ण सन्तोषप्रद न हो सका था। इसी कारणसे प्रकाशकोंको इसके प्रकाशनमें विशेष कष्ट उठाना पड़ा। इस संबंधमें 'ज्ञानमण्डल' के व्यवस्थापक श्री मुकुन्दीलाल श्रीवास्तवने जो परिश्रम किया है, उसे हम कृतज्ञतापूर्वक स्वीकार करते हैं।

अन्तमें हम बाबू शिवप्रसाद गुप्त तथा बाबू श्रीप्रकाश बी० ए० एल एल० बी० बार-एट-लाके प्रति अपनी हार्दिक कृतज्ञता प्रकट करते हैं जिन्होंने इस पुस्तकके प्रकाशित करानेमें स्वतः विशेष ध्यान दिया है।

श्री वृन्दावन चन्द्र भट्टाचार्य।

सारनाथका इतिहास।

प्रथम अध्याय

सारनाथके विवरणकी आवश्यकता।

सारनाथ बौद्धोंका एक अति पवित्र स्थान है। बौद्ध धर्म्म आधे जगत्में फैला हुआ है। उसीकी जन्मभूमि सारनाथ है। बुद्ध भगवानने यहीं उस पवित्र और श्रेष्ठ धर्म्मके प्रचारका आरम्भ किया था, इसी कारण बौद्धोंके चार (१) महास्थानोंमें इसे भी स्थान प्राप्त है। एक समय वह था जब इसी सारनाथ अथवा "इसिपतन मिगदाय" में कई सहस्र भिक्षु और भिक्षुकियां एकत्र होती थीं (सहस्रों धर्मशील बौद्ध इस सद्धर्म्मको ग्रहणकर निर्व्वाणपथ पर चलते थे)। एक समय यही सारनाथ भारतवर्षके सर्वप्रधान स्थानोंमें गिना जाता था। चीन, जापान, जावा,

---

(१) और तीन महा तीर्थोंके नाम हैं:—कपिलवस्तु नेपालकी तराईमें, बुद्धगया (गयाके निकट) और कुशिनगर या कुशिनारा जिसे कसिया कहते है गोरखपुर जिलेमें है।

ब्रह्मदेश लङ्का इत्यादि देशोंके भी यात्री इस अपूर्व्व पुण्यभूमि-को उत्साहित होकर आया करते थे। इस महातीर्थमें बौद्ध अरहत्, श्रमण, भिक्षू, स्थविर आदिने जिस शान्त रसका सञ्चार किया था और अपने पुण्य चरित्रसे सबको मुग्ध किया था, वह बात जगत् के धर्म्म-इतिहासमें भली भांति विख्यात है। उसी वैराग्य-कथाके श्रवणसे आज भी हम लोगोंको रोमाञ्च होता है। कालचक्रवश हो इस समय वही सारनाथ इस अवनत अवस्थाको प्राप्त हुआ है। वह एक समय बौद्ध साधुओंके लिए एकान्तमें बैठ निर्व्वाणपद प्राप्त करनेके हेतु योग साधनका मुख्य स्थान था। इसी सारनाथ में महाराज अशोककी राजाज्ञा निकली थी, (जिन्होंने यहां पर एक स्तम्भ भी खड़ा कराया था)। महाराज अशोकके धर्मानुरागके कारण सारनाथ बौद्धधर्म्मावलम्बियोंका मुख्य केन्द्र बन गया। महाराज अशोकके पीछे महाराज कनिष्कने भी नानाप्रकारसे इसकी उन्नति की। सर्व्व धर्म्म प्रतिपालक गुप्त राजाओंने बाह्य आडम्बरमें इस स्थानकी उन्नति विशेष न की थी तो भी उनके समयमें यहाँकी शिल्प-कीर्त्ति क्रमशः बढ़ती ही गयी। महाराज हर्षवर्द्धनके पश्चात् बौद्ध धर्म्मकी जो अवनति हुई है उसके भी चिन्ह यहां विद्यमान हैं। ब्राह्मण धर्म्म-के पुनर्विकासके समय पालवंशीय राजाओंने भी इस धर्म्मकी रक्षा करनेकी चेष्टा की थी। सारनाथमें उनकी बनायी "शैल-गन्धकुटी" के चिन्ह आजतक वर्तमान हैं। बारहवीं शताब्दीमें मुसलमानोंके आक्रमणके साथ साथ जब बौद्धधर्म भी भारत-वर्षसे विदा हुआ तब सारनाथका प्रधान विहार (Main Shrine) भी गिर गया। इन सत्रह सौ वर्षोंमें सारनाथने

विद्या और धर्मका केन्द्र होनेकी जो ख्याति प्राप्तकी थी उसके इतिहासकी एक दम अवहेलना नहीं की जा सकती। सारनाथका इतिहास बौद्ध धर्म्मके इतिहासका एक विशेष अंग माना जाता है जिसका वर्णन संक्षेपमें नीचे दिया ताजा है।

पालीभाषामें सारनाथका इतिहास

भारतीय पुरातत्त्व विभागकी ओर से इस स्थानकी खोदाईके पूर्व भी सारनाथका इतिहास विद्वानोंको भली भांति ज्ञात था। पालीभाषामें सारनाथका जो इतिहास मिलता है वह खोदाई होनेके पहले भी विदित हो सकता था। परन्तु इतिहास जाननेका प्रयोजन न होनेके कारण इस ओर विशेष प्रयत्नका कुछ पता नहीं लगता। पालीभाषामें सारनाथको ही ‘इसिपतन मिगदाय” कहते हैं। इसकी और सारनाथ नामकी उत्पत्ति और इनके प्रचारकी आलोचना यथास्थानकी जायगी।

पालीग्रन्थोंमें जो ‘इसिपतन मिगदाय’के विषयमें लिखा पाया जाता है यदि उसके आधारपर ही एक इतिहास तय्यार किया जाय तो भी वह एक प्रकारका दन्तकथा-संग्रह ही होगा। यह उपाख्यानमय इतिहास इतने दिनों तक ऐतिहासिक दृष्टिसे आदरणीय न हो सका। परन्तु इस प्राचीन स्थानकी खोदाईसे यह उपाख्यानमय वर्णन सत्य सिद्ध हुआ, अब इस विषयमें किसीको भी सन्देह नहीं रहा। उदाहरण स्वरूप कह सकते हैं कि धम्मकीतिके “सद्धम्म संग्रह” नामक पालीग्रन्थमें जो धम्म कलहकी बात पायी जाती है, वही बात इस सारनाथमें मिले हुए अशोक स्तम्भ पर भी उल्लिखित है।

बुद्ध भगवान्के साथ सारनाथका सम्बन्ध

बुद्ध भगवान गयाजी में बुद्धत्व प्राप्त करनेके पश्चात् इसी सारनाथमें आये और यहींपर उनके श्रीमुखसे "धर्म्मचक्रप्रवर्त्तन" सूत्रका कथन हुआ । यहींपर उन्होंने साहूकारके पुत्र 'यस्स' और उसके पिताको भी धर्म्मोपदेश देकर बौद्ध बनाया। "उदपानदूसक" नामक जातकका वर्णन भी यहीं किया था। इन्हीं कई कारणोंसे सारनाथ और बुद्ध भगवान्में घनिष्ट सम्बन्ध है ।

बौद्ध धर्मका प्रथम प्रचार

बुद्धत्व प्राप्त करनेके पश्चात्. आठवें सप्ताहमें, भगवान् बुद्ध किरिपलू नामक बनसे चलकर अजपाल वृक्षके नीचे आये। (२) यहां आनेपर वे अपने मनमें इस बातका विचार करने लगे कि जो सत्यका मार्ग ढूँढ़ा है उसका प्रचार लोगोंमें करूं या नहीं। उन्होंने यह देखा कि मनुष्य संसारमें रह कर कई प्रकारके विलासोंके आदी हो गये हैं। उनके लिए कारणतत्व, प्रतीत्यसमूत्पाद, वासनोच्छेद आदि निर्व्वाण पद प्राप्त करनेके सब उपाय निष्फल होंगे। (३)

(२) "अजपाल" वृक्षको भूलसे हार्डी साहेबने सब जगह "अजापाल" वृक्ष लिखा है। किन्तु मूलग्रन्थमें यह "अजपाल" ही पाया जाता है:— अथ खो भगवा सत्ताहस्स अच्चयेन तस्मा समाधिम्हा वुट्ठहित्वा राजायतन मूला येन अजपाल निग्रोध तेन उपसंकमि...। महावग्ग

(३) इस स्थानपर हमने हीनयानी मतकी जीवनीका अनुसरण किया है। दूसरे मतकी जीवनीके साथ इसका विशेष प्रभेद दिखानेकी चेष्टाकी गयी है। इस सम्बन्धमें ब्रह्मदेशी जीवनीमें इस प्रकार लिखा है। "सभी मनुष्य पंचरिपुके प्रभावसे हीनावस्थामें निमज्जित हुए हैं।" Legend of the Burmese Buddha, by Bigandat Vol I, p. 112. हिन्दू छः रिपु बतलाते हैं और यहां पांचही हैं, यह विचारणीय है।

यदि उनको उपदेश दिया जाय और वे उसे न समझ सकें तो यह कार्य्य निष्फल ही होगा । इसी प्रकारकी अनेक चिन्ताएं उनके मनमें होने लगी । अन्तमें उन्होंने यही निश्चित किया कि हम धर्म्म प्रचार नहीं करेंगे । तब ब्रह्मा सहम्पति (४) ने देखा कि यदि धर्म्म प्रचार न होगा तो पृथ्वीका सर्व्वनाश हो जायगा, "नस्सति वत भो लोको, विनस्सति वत भो लोको" । तब वे शीघ्रता पूर्वक बुद्ध भगवान्‌के पास जा, हाथ जोड़, खड़े हो, प्रार्थना कर कहने लगे "प्रभो ! कृपा कर धर्म्मका प्रचार कीजिये, जिससे अविद्याका लोप हो (देसेतु भवन्ते भगवा धम्मं...अञ्ञातारो भविस्सन्तीति) । अब भी बहुत लोग संसारसे विरक्त हैं धर्म्मोपदेश न मिलनेसे एकदम नष्ट हो जायंगे"—इत्यादि । इस प्रकार ब्रह्माने तीनबार प्रार्थना की । तब भगवान्‌ने सोच विचार कर ब्रह्माकी प्रार्थना स्वीकार करली । (५) तदनन्तर ब्रह्मा बुद्ध भगवान्‌को प्रणाम कर अन्तर्ध्यान हो गये ।

तब बुद्ध भगवान्‌ने सोचा "किसको धर्म्मोदेश देना उचित है । कौन धर्म्मग्रहण करनेमें समर्थ है ।" उन्हें स्मरण

---

(४) बौद्धगण "सहम्पति" को स्वयंभू मानते हैं । ब्रह्मदेशीय जीवनीमें लिखा है This Brahma had been in the time of Buddha Kathaba a Rahan under the name of Jhabaka...... " विदित होता है ब्रह्मदेशीय उच्चारणके कारण "कस्सप" का "कथब" हो गया है । "रहन" का अर्थ "अर्हन" । (१)

(५) इसका वर्णन ब्रह्मदेशीय जीवनीमें इस प्रकार है कि उस समय बुद्ध भगवान्‌ने अपने ज्ञाननेत्रसे संसार पर दृष्टि डाली और देखा कि सम्पूर्णत: पापमें मग्न और कोई अभी पापसे बचा हुआ है ।

हुआ कि "कालामो" एवं 'उद्दक" रामपुत्त, ये ही उपयुक्त पात्र हैं। किन्तु फिर उन्हें विदित हुआ कि थोड़े ही दिन व्यतीत हुए उन्होंने शरीर त्याग किया है। तत्पश्चात् उन्होंने मनमें विचारा कि "पंचवर्गीय" का मैं ऋणी हूं। योगसाधनके समय उन्होंने मेरे साथ बड़ा उपकार किया है।" ("वहूपकाराखो मे पञ्चवर्गिया भिक्खू × ×) उन्हींको प्रथम धर्म्मोपदेश देना उचित है। तब वे वाराणसीकी ओर चले।

सारनाथमें बुद्ध भगवानका आगमन

बुद्धता प्राप्त करनेके पश्चात् आठवें सप्ताहमें, नाना स्थानोंमें विचरण करते हुए बुद्ध भगवान् वाराणसीके इसिपतन मिगदायमें पहुंचे। मार्गमें उपक नामक आजीवकके साथ उनकी भेंट हुई। (६) उस समय पञ्चवर्गीय भिक्षूगण सारनाथमें रहते थे। वे बुद्ध भगवान्को दूरसे ही देख आपसमें एक दूसरेसे कहने लगे "बन्धुगण, आयुष्मन् श्रमण गौतम यहां आ रहे हैं। वे बाहुल्लिक (अर्थात् बाहिरी आडम्बर वाले—पाली शब्दसे ही अधिक अर्थ खुलता है इसी कारण वही शब्द व्यवहारमें लाया गया है) एवं प्रधानविभ्रान्तो (प्रधान विभ्रान्त) हैं। हम लोग उनको प्रणाम न करेंगे और उनके सम्मानार्थ खड़े भी न होंगे। (७) एक आसन

(६) ब्रह्मदेशीय विवरणमेंमिगदाय = मिगदावन, वाराणसी = बारानथी पञ्चवर्गीय भिक्षुगण = पञ्चरहन्

(७) महावग्ग १. ६. १० Siq "विनय पिटकम्" Edited by Oldenberg, Vol. I) तथा Buddhist Birth Stories The Pali Introduction, p. 112. भी देखो।

उनके लिए अलग रख दिया जाय। यदि उनकी इच्छा होगी तो वे स्वयं बैठेंगे। (८) इधर जब बुद्ध भगवान् उनके निकट पहुंचने लगे तो वे अव्यवस्थितचित्त हो उठने लगे। जब बुद्ध भगवान् बिलकुल उनके सम्मुख आ गये तब उन पंचवर्गियोंसे न रहा गया। उन्होंने उनके पैर धोये और भगवान् शब्दसे उनका सम्बोधन किया। इस प्रकारके सम्बोधनको सुन कर बुद्ध भगवान्ने उन्हें नाना उपदेश द्वारा समझाया कि मैं अब गौतम नहीं हूं, मैं अब "सम्यक् सम्बोधिप्राप्त तथागत" बन गया हूं। इसी प्रकार बहुत वाद प्रतिवादके पीछे, पंचवर्गीय जन बुद्ध भगवान्का असीम प्रभाव देख उनके उपदेशके अभिलाषी हो गये और धर्म्म मार्गमें दत्त चित्त हो कर उनकी आज्ञाके पालनमें तत्पर हो गये।

"धम्मचकप्पवत्तनसुत्त" का प्रचार

तत्पश्चात् बुद्ध भगवान पञ्चवर्गियोंको सम्बोधित कर बोले 'हे भिक्षुकगण! प्रव्रज्या ग्रहण करने वालोंको ये दो अन्तिम (चरम) मार्ग त्याग कर देना चाहिये। एक, विलासप्रियता, तो कामी, हीन, ग्राम्य, नीचोंके योग्य है, क्योंकि यह मार्ग अनार्य एवं निष्फल है। और दूसरा, आत्माको कष्ट देना, भी दुःखजनक और अनार्य होनेसे निष्फल ही है। हे भिक्षुगण! इन दोनों चरम पथका परित्याग करके श्रेष्ठ मध्य पथको ग्रहण करो। यही पथ दृष्टिका खोलनेवाला, ज्ञान-

(८) "रहण गौदम शिष्योंको खोज रहे हैं उन्हें इस समय अन्न वस्त्रकी लालसा है हम लोग उनका सम्मान न करेंगे। Legend of Burmese Buddha p. 171

का निष्पादक तथा शान्ति, अभिज्ञा, सम्बोधि (सम्यक ज्ञान) एवं निर्व्वाण (मुक्ति) का साधक है। (९) इसी मध्यम पथको "आर्य अष्टाङ्गिक मार्ग" (सम्यक् दृष्टि, सम्यक् सङ्कल्प, सम्यक् वाक्य, सम्यक् आजीव, सम्यक् व्यायाम, सम्यक् स्मृति, और सम्यक् समाधि) कहते हैं।(१०) हे भिक्षुगण! दुःख आर्यसत्य है। जन्म, जरा, व्याधि मरण, शोक, परिवेदना, व्याकुलता, आश्वास,—ये सभी दुःख कर हैं। अप्रिय वस्तुका संयोग और प्रियवस्तुका वियोग भी दुःख कर ही हैं। यह पञ्चोपदान स्कन्द ही दुःख कर है। हे भिक्षुकगण दुःख समुदाय आर्य सत्य है। पुनर्जन्मकी माता जो तृष्णा है वह राग-युक्ता है। तृष्णा तीन प्रकारकी होती हैं,—काम तृष्णा, भव तृष्णा, विभव तृष्णा। हे भिक्षुगण! दुःख निरोध आर्य सत्य है। पूर्व्वोक्त तृष्णाका सम्यक् निरोध एवं त्याग ही शान्ति-प्रद है। हे भिक्षुगण! दुःख निरोध-गामी मार्ग आर्य्य सत्य है (११) हे भिक्षुगण! अब तक सुने गये धम्म समूहसे दृष्टि, ज्ञान, प्रज्ञा, विद्या और आलोककी उत्पत्ति होती है। एवं इस दुःखको ही आर्य सत्य समझना चाहिये है। हे भिक्षुगण! मैंने यह प्रतिज्ञा

---

(९) ये शब्द बौद्ध धर्म के पारिभाषिक शब्द हैं। विस्तार भयसे इन-की व्याख्या नहीं की गयी है।

(१०) प्राचीन साहित्यमें पुनरुक्ति दूषणीय न होकर कई कारणोंसे स्वाभाविक ही प्रतीत होती है।

(११) कुषान समयकी लिपिमें एक लेख पत्थरके छातेके टुकड़े पर मिला है। उसीपर पालीभाषामें इस आर्य सत्यकी बात लिखी गयी है। इसका सम्पूर्ण वर्णन पांचवे अध्यायमें मिलेगा।

की थी कि जब तक इन चार आर्य सत्योंका एवं इनके भीतरी त्रिपरिवृत्त द्वादशाकार सत्यका सम्यक् ज्ञान और विशुद्ध दर्शन न होगा, तब तक मैं यह स्वीकार न करूंगा कि देवलोक, मारलोक वा, ब्रह्मलोकमें श्रमण, ब्राह्मण, मनुष्य किसीको भी सम्यक् ज्ञान प्राप्त हुआ है। किन्तु अब मुझे इसका ज्ञान और दर्शन प्राप्त हो गया है, मेरा चित्त मुक्त हो गया है और यही मेरा अन्तिम जन्म है।" बुद्ध भगवान्‌के इतना कहने पर उन पञ्चवर्गियोंने उन्हें प्रणाम किया।

कौन्डिन्यका बौद्ध धर्म्म ग्रहण और ज्ञान।

इस उपदेश श्रवणसे ही कौन्डिन्यके चित्तका मैल दूर हो कर दिव्य ज्ञानका प्रकाश हो गया। "जितने समुदय-धर्मक हैं वे सब निरोध-धर्मक हैं।" इस प्रकार बुद्ध भगवान्‌के धर्म्म चक्र-प्रवर्त्तन करनेपर भौम्य देवोंने यह घोषणाकी "भगवान् वाराणसी धामके इसिपतन मिगदायमें श्रेष्ठ धर्म्म चक्र प्रवर्त्तन कर रहे हैं। (१२) इस लोकमें श्रमण, ब्राम्हण, देवता, मार अथवा ब्रह्मा ही क्यों न हो, कोई इसका प्रतिवर्त्तन नहीं कर सकता।" इस प्रकारके बचन—"चातुर्म्महाराजिक" देवगणने भौम्य देवगणसे सुने और उन लोगोंने भी पूर्व्वानुरूप शब्दोंका उच्चारण किया। इनके शब्दोंको सुनकर तेंतीस देवता, यमराज, तुषित देवता, निर्माणरति, परनिमित्त देवता, वशवर्त्तिनी देवता ब्राम्ह

(१२) सारनाथके अशोकस्तम्भ एवं और और मूर्तियोंपर भी यही "धर्मचक्र" साङ्केतिक शब्द पाया जाता है ४७१ वर्ष वि० पू० इस स्थानपर बुद्ध भगवान्‌ने उस समय धर्मचक्रप्रवर्त्तन किया था जब वे ३५ वर्षके थे।

कारिक देवताने भी उन्हीं शब्दोंका उच्चारण किया। उसी क्षण ब्राह्मलोक तक शब्द जा पहुंचा। पृथ्वी और अकाश कांप उठे। तब भगवान् बुद्ध आवेग भाव से बोले 'कौन्डिन्य (ज्ञाता) ने जाना, कौन्डिन्यने जाना"। इस प्रकार 'आयुष्मान कौन्डिन्य" का 'अज्ञात कौन्डिन्य" नामकरण हुआ। (१३)

बुद्ध भगवानका पन्च शिष्य ग्रहण करना।

तत्पश्चात् कौन्डिन्यने अपने और साथियोंको भी नये धम्मका उपदेश देनेके लिए बुद्ध भगवान्से प्रार्थना की। तब बुद्ध भगवान् बोले—"हे भिक्षुगण! सन्निहित होओ, धम्म प्रचारित हो गया है। तुम लोग इस समय शुद्धि द्वारा समस्त दुःखोंसे निवृत्त हो।" इस प्रकार "इसिपतन मिगदाय" में सबसे पहले "बौद्ध धम्म समाज" स्थापित हुआ (१४) इस पुराणके अन्त भागमें लिखा हैं कि "इस समय समग्र पृथ्वी पर केवल छः ही धम्मात्मा थे" अर्थात् बुद्ध भगवान् और पंचवर्गीय भिक्षुगण। (१५)

---

(१३) (Samyutto 5. Pali Text Society) p. 420, Also compare "The Life of the Budha (Tilutan)" translated by W. W. Rockhill, p. 36. 37.

(१४) महावग्ग 1. 6-19 seq. (Vinaya Pitakam Edited by H. Oldenberg, Vol. I.

(१५) इसीके साथ यह भी विचारणीय है "In a temple at Amoy, Bishop Smith saw eighteen images, which are said to represent the eighteen original disciples of Buddha" Hardy's "A manual of Buddism" p. 184 footnote.

यश और उसके परिवारका बुद्धभगवानके शिष्य होना ।

प्राचीनकालमें वारणसी नगरके एक बड़े धनीका यश नामक एक पुत्र था। उसके लिये हेमन्त, ग्रीष्म और वर्षा कालके निमित्त तीन भवन पृथक् २ बने हुए थे। जब वह वर्षाऋतुमें वर्षाकालके निमित्त बने हुए भवनमें वास करता तब वह वहीं पर चार महीने तक नाचने और गाने वाली स्त्रियोंसे परिवेष्ठित रहता; भवनके नीचे तक नहीं उतरता था। एक वार रात्रिके समय एकाएक उसकी निद्रा भंग हो गयी। उसने उठ कर देखा कि नाचने गाने वाली स्त्रियां सब घोर निद्रामें अचेत पड़ी हैं। किसीके कण्ठ पर वीणा पड़ी है; किसीके हाथमें मृदङ्ग, कोई मुंह खोले हुए खर्राटा ले रही है, किसीके मुखसे लार (थूक) निकल रही है, कोई सोते ही सोते नाना रूपसे प्रलाप कर रही है। यह देख "यश" एक दम चौंक उठा। उसने मनमें विचारा "यह तो जीता जागता श्मशान है, यह तो महा उपद्रव है ! महा उपसर्ग है !! (उपद्दुतं वतभो उपससट्ठं वत भो।" (१७) वह वार वार यही कहने लगा। मनमें पूर्ण वैराग्यका सञ्चार हो गया। उसने उसी समय गृहत्याग किया (१८) भवनके या नगरके

---

(१६) ब्रह्मदेशीय जीवनीमें "यश" रथ (Ratha) के नामसे परिचित है।

(१७) देहावस्था समूह और प्रकृति भी सचमुच मनुष्यके लिए एक महाभार स्वरूप है। हमारे लिए यह स्थूल प्रकृति नाना दुःख, और विषादका कारण है। Burmese Buddha p. 100.

(१८) बुद्ध भगवान्के महापरिनिर्व्वाण जातकमें भी इसीके सदृश घटना का वर्णन पाया जाता है।

द्वार पर कोई भी बैठा न था। वह वहांसे निकल वाराणसीके उत्तर "इसिपतन मिगदाय" की ओर चल पड़ा। सबेरेका वक्त था। उषाकी ज्योतिसे चारों ओर उजाला था। उस समय बुद्ध भगवान् "चक्रमण" पर टहल रहे थे। बुद्ध भगवान् धनीके पुत्रको दूरसे ही देख कर चक्रमण पदसे उतर आये और अपने आसन पर बैठ गये। यश उनके पास बैठकर आवेग पूर्ण हृदयसे बोल उठा "उपद्दुतं वतभो-उपस्सट्ठं वतभो" इत्यादि बुद्ध भगवान्ने कहा "हे यश! यहां कोई उपद्रव नहीं हैं, यहां कोई उपसर्ग भी नहीं है। यश आ, बैठ, मैं तुझे धर्म्मोपदेश दूं।" तब यश बुद्ध भगवान्को प्रणाम कर एक किनारे बैठ गया। बुद्ध भगवान्ने यशको उपदेश देते हुए, दान, शील स्वर्ग, वैराग्य परोपकार संक्लेश, निष्काम्य और आनृशंस विषयक कथाएं सुनायी। जब बुद्ध भगवान्ने यह समझ लिया कि यश मृदु और प्रसन्नचित्त है तब उन्होंने अपनी प्रसिद्ध और उत्कृष्ट उपदेश वाणीका उच्चारण किया—"समुदय (१६) दुःख पूर्ण है निरोध ही प्रकृत पथ है।" बुद्ध भगवान्की उपदेशवाणीको सुन कर यशने अपनेको कई रंग धारण कर सकने वाले श्वेत वस्त्रकी नाई समस्त रागादिसे रहित समझा।" (२०)

इधर यशकी माताने जब उसे घरमें नहीं देखा तो उसने तुरन्त अपने पतिके निकट जा कर उसके लोप होनेकी सूचना दी। उसने तुरन्त ही टहलुओंको चारो ओर दौड़ाया।

---

(१९) "समुदय" का अर्थ बौद्धोंने "समस्त उत्पत्ति शील पदार्थ माना है।

(२०) Burmese Buddha page 121

शीघ्र ही पता लग गया कि वह इस समय ऋषिपतनमें है। यशका पिता अपने भवनसे चल शीघ्र ही वहां जा पहुंचा। जब वह बुद्ध भगवान्‌के निकट पहुंचा तो उन्होंने उससे यशके वैराग्यकी चर्चाकी। साहूकारने भी बुद्ध भगवान्‌के "मार्ग प्रदर्शक स्तुति तथा त्रिरत्न" (बुद्ध, धर्म, संघ) की शरण इत्यादि धर्म्मोंपदेशक ग्रहण किया और प्राणान्त तक उपासक बना रहा। बौद्ध धर्म्म शास्त्रमें यही प्रथम उपासक मान गया है। तत्पश्चात् साहूकारने यशको बैठा देखकर उससे माताको जीवन-दान (२१) करनेका अनुरोध किया। यश बुद्ध भगवान्‌के मुखकी ओर देखने लगा। यशका पिता समझ गयाकि अब यशका संसारी होना अनुचित है। तदनन्तर साहूकारने बुद्ध भगवानसे यह प्रार्थना की कि आप यशके सहित मेरे घर पधारनेकी कृपा करें। बुद्ध भगवानने इसे स्वीकार किया। साहूकार आज्ञा पानेपर बुद्धभगवानका अभिवादन और प्रदक्षिणा कर अपने घर लौट गया। यशने बुद्धभगवानसे प्रव्रज्या और उपसम्पदा ग्रहण करनेकी इच्छा प्रकटकी। बुद्धभगवान्‌ने उसे ब्रह्मचर्य पालनादि का आदेश प्रदान किया। इसके कुछ दिन पीछे एक दिन बुद्ध भगवानने साहूकारके घर पहुंच कर उसकी माता आदिको धर्म्मोंपदेश किया। वे सबके सब बुद्ध भगवानके शिष्य होगये। इधर "यशके गृह-त्याग और प्रव्रज्या-ग्रहण" के समाचार सुन कर काशीके रहने वाले चार (२२) गृहस्थोंने

(२१) ब्रह्मदेशीय जीवनी में लिखा है कि बुद्ध भगवान्‌ने यशको कुछ काल तक उसके पितासे छिपाकर रक्खा था।

(२२) उनके नाम हैं—सुबाहु, पुराणजि गवम्पति औरविमल।

जो यशके समीपी थे प्रव्रज्या -ग्रहणकी अभिलाषा से प्रेरित होकर बौद्ध धर्म्म ग्रहण किया । देखते देखते और भी पचास गृहस्थ बुद्ध भगवान्‌के शिष्य हो गये । उस समय समग्र पृथ्वी पर कुल साठ "उपासक" वर्तमान थे । (२३)

उदपान जातक । एक समय बुद्ध भगवान्‌ने इसी ऋषि पतनमें (रहते हुए) शृगाल सम्बन्धी "उदपान -दूषक" नामक जातकका वर्णन किया था । (२४) एक शृगाल भिक्षुओंके सञ्चित पानीके घड़े पर लघुशंका (लघवी, पेशाव) कर भाग जाया करता था । एक दिन श्रमणोंने शृगालको उदपानके समीप आने पर लाठीसे पीटना आरम्भ किया । शृगाल चिल्लाता हुआ भागा और फिर कभी वहां नहीं आया । एक दिन सभामंडप में भिक्षुओंने इसी प्रसंगको उठाया,—"उदपानदूषक शृगाल श्रमणगण द्वारा पीटे जाने पर अब इधर नहीं आता ।",

इस प्रसङ्गका उत्तर देते हुए बुद्ध भगवानने कहा कि इस जन्मकी नाईं यह शृगाल अपने पूर्व्व जन्ममें भी उदपान दूषक ही था । उन्होंने उसके पूर्व जन्मकी कथा भी कही जो इस प्रकार है—प्राचीन कालमें यह ऋषि पतन भी यही था और उदपान भी यही था । उस समय बोधिसत्वने वाराणसीके किसी कुलमें जन्म लिया था । यथा समय प्रव्रज्याग्रहण कर वे ऋषियोंके साथ ऋषि-पतनमें रहने लगे । उस

(२३) Mahavagga (Text) p. 15 for the Tibetan Version, look up. Rock hill's Life of the Buddha, pp. 38-39. तिब्बतीय जीवनी में यह उपाख्यान संक्षेप से वर्णित है ।

(२४) Jataka (II 354)

समय एक शृगाल इसी उदपानको दूषित कर भाग गया था। तपस्वीगण उसे बांध कर किसी प्रकार बोधिसत्वके निकट पकड़ लाये। बोधिसत्व उसके साथ बातें कर गाने लगे,—"हे सौम्य, अरण्यवासी तपस्वियोंके काठसे बने हुए उदपानको तुमने क्यों दूषित किया।" इसे सुन शृगालने भी गीत गाया "शृगालोंका यही धर्म्म है कि जिस स्थानपर जल पियें उसी स्थान पर प्रस्राव भी करें, यही उनका वंशानुगत धर्म है। इससे छुड़ाना आपको अनुचित है।" यह सुन बोधिसत्वने फिर एक गीत गाया,—"जिसका धर्म्म ऐसा है उसका अधर्म्म कैसा होगा ? हमें तो तुम्हारा धर्म्माधर्म्म कुछ मालूम ही नहीं होता।" बोधिसत्व उसे इस प्रकार घुड़ककर बोले—तुम यहांसे चले जाओ फिर कभी न आना।" शृगाल वहांसे चला गया और फिर वहां नहीं आया।

बुद्धघोषका कथन।

महापदान सुत्तकी टीकामें बुद्धघोषने लिखा है, कि इसिपतन मिगदाय नामक स्थानही धर्म्मचक्रप्रवर्त्तन है।

"खेमे मिगदाये"

इस नामके सम्बन्धमें टीकाकार बुद्ध घोषने लिखा है;-उस समय 'इसिपतन' (संस्कृत ऋषिपतन) मंगलमय उद्यानके रूपमें प्रसिद्ध था। यह उद्यान मृगोंको इसलिए आदर पूर्व्वक समर्पण किया गया था जिससे वे निर्भय हो कर इसमें वास करें। इसी कारण वह मिगदाय (सं० मृगदाय) कहलाता है। बुद्ध भगवान् (गौतम) और इनसे पहलेके भी बुद्धगण धर्म्मोपदेश देनेके निमित्त, सबसे पहले आकाश

मार्गसे इसी स्थान पर अवतीर्ण हुए थे । (टीकामें यह भी उल्लेख है कि किसी कारण वश गौतम बुद्ध यहां पैदल ही आये.।)

"नन्दिय वत्थू" (२५) नामक उपाख्यानका घटनास्थल भी "इसिपतन मिगदाय" ही लिखा है ।

"धम्मपद" में उल्लेख

बुद्ध भगवान्का उपदेश सुन कर 'नन्दिय' ने विचारा कि भिक्षुओंके रहनेके निमित्त कोई निवासगृह बनवाना बड़े पुण्यका काम होगा । इस लिए उसने एक चतुःशाला बनवायी और उसमें चार कमरे तथा कई आसन बनवा दिये । उसने इसे बुद्ध भगवान्के अधीन संघको दे दिया ।

सारनाथके प्राचीन नामकी उत्पत्तिपर विचार ।

(१) ऋषिपतन ।

"सुद्धावास" देवगणने जम्बूद्वीपमें रहने वाले प्रत्येक बुद्धको (२६) यह संवाद दिया कि बारहवें वर्षके अन्तमें बोधिसत्व "तुषित भवन" से उतरेंगे, तुम लोग बुद्ध क्षेत्रका त्याग करो ।" इस पर सब 'प्रत्येकबुद्ध' अपना अपना समय समाप्त कर परिनिर्व्वाणको प्राप्त हुए । वाराणसीसे आधे योजन

---

(२५) धम्मपद १६ वाँ वग्ग ।

(२६) बौद्धोंकी भाषामें "पच्चेक बुद्ध" (प्रत्येक-बुद्ध) सम्यक् सम्बुद्ध नहीं कहलाता, क्योंकि बुद्धके सम्यक् सम्बुद्धरूपके निमित्त विशेष तपस्याकी ज़रूरत होती है । डाक्टर ओल्डनबर्ग "बुद्ध" पृष्ठ १२० फुटनोट ।

पर पांच सौ 'प्रत्येक बुद्ध" रहते थे। (२७) वे पृथक् पृथक् भविष्यद्वाणीका उच्चारण करते हुए निर्व्वाण पदको प्राप्त हुए।

इस स्थान पर ऋषिगण पतित हुए थे अतएव इसका नाम "ऋषिपतन" हुआ। (२८) फ्रांसीसी पण्डित सेनार्ट "ऋषिपतन" से "इसिपतन" हुआ, यह नहीं मानते। उनका कहना है कि इस नामको छोड़कर दूसरे और दो नाम-"ऋषिपत्तन" और "ऋषिवदन" भी हो सकते हैं। उनका यह मत है कि सारनाथका प्राचीन नाम "ऋषिपत्तन" ही था। कालक्रमसे अपभ्रष्ट हो "ऋषिपतन" हो गया। बादको इसका समर्थन करनेके लिये कहानी रच ली गयी, इत्यादि। (२९) हम

(२७) प्राचीन पालीय ग्रन्थोंके अवलोकनसे ऐसा अनुमान होता है कि जब 'सम्यक सम्बुद्धगण' का अवतार नहीं हुआ था, अथवा उनके द्वारा कोई संघ भी नहीं स्थापित हुआ था, उसी समय 'प्रत्येक बुद्धगण' आविर्भूत हुए थे। (Apadana folke of the Phayre Mss.) किन्तु बादके ग्रन्थोंसे मालूम होता है कि "प्रत्येक बुद्धगण" उसी समय ही नहीं परन्तु बुद्धके समयमें भी वर्तमान थे। वे भी 'प्रत्येकबुद्ध' के नामसे कहाते थे कारण बुद्धभगवान्‌ने कहा है कि समस्त संसारमें इनको छोड़कर दूसरा कोई 'प्रत्येक बुद्ध' के तुल्य नहीं है।

(२८) "ऋषयोऽत्र पतिता ऋषिपतनम्"—महावस्तु अवदानं (Le Mahavatstu, Vol I, p. 359).

(२९) "Endepitde cette etymologie, les deux orthographes du mot, familieres a notre, sont, non pas ऋषिपतन, mais on ऋषिपत्तनon ऋषिवदन J'ai don ne la preference a cette seconde forme (ordinaire asusi daus- les gathas du Lat. Vist.)

भी सेनार्ट साहबसे सहमत हैं। क्योंकि महावस्तुमें भी लिखा है कि बुद्धगण पतन होनेसे पूर्व्व वाराणसीसे आधे योजनपर महाबनमें वास करते थे। जब वे सब पांच सौ एकत्र ही रहते थे उस समय यह स्थान ऋषियोंका एक नगर हो जाता था। यही बात स्वाभाविक भी है। पतनका वदन हो जाना कोई अस्वाभाविक नहीं है। प्राकृतके नियमानुसार "प" स्थानमें "ब" एवं "त" स्थानमें "द" हो जाता है। सुतरां ऋषिपतन किसी समयमें "ऋषिवदन" नामसे पुकारा जाता था। (३०) महावस्तुमें भी ऋषिवदनका ही उल्लेख है, यथा—"ऋषिवदनस्मिं" (P. 43, 307) "ऋषिवदने मृगदाये" (P. 323, 324) और उसीमें "ऋषिपत्तन" भी पाया जाता है। (See p. 366-68) ललित विस्तरमें भी इसी नामका उल्लेख है।

(२) मिगदाय। "मिगदाय" वा "मिगदाव" का वर्णन इस प्रकार है। महावस्तुमें निग्रोधमिग-जातक (३१) एक उपाख्यानके अनुरूप पाया जाता है। वह है—"किसी समय इसी विशाल वनखंडमें 'रोहक' नामक एक मृगराज सहस्र मृगोंकी रक्षाका भार ग्रहण कर रहता था। उसके दो पुत्र थे, एकका नाम

(३०) चीन देशीय ग्रन्थों और दिव्यावदानमें "ऋषिवदन"° ही पाया जाता है। Divyav. p. 393. A-yu-wang-ching, ch. 2.; The Divyav. at p. 464. ह्विङ्गने ऋषिपतनका अनुवाद ऋषिके पतन रूपसे ही लिया है, किन्तु फाहियन (Fahion) ने निस्सन्देह "ऋषिपत्तन"! कहा है।

(३१) Jatak I. 149,

'न्यग्रोध' और दूसरेका 'विशाख' था । मृगराजने अपने दोनों पुत्रोंको पांच पांच सौ मृग बांट दिये थे । उस समय काशी-राज्यके राजा ब्रह्मदत्त इस सघन वनमें सदा आते और कितनेही मृगोंको मार ले जाते थे । उनके हाथसे शिकारमें उतने मृग न मरते थे जितने मृग आहत होकर कुश कांटों और झाड़ियोंमें जा छिपते थे । झाड़ियोंसे न निकल सकनेके कारण वे वहीं मर जाते और शृगालों तथा मांस भक्षक पक्षियोंके आहार होते थे । एक दिन न्यग्रोध मृगराजने अपने भ्राता विशाखसे कहा "आओ भाई ! हम तुम मिलकर राजाको सूचित करें कि जितने मृग तो आपके मारनेसे नहीं मरते उतने आहत हो झाड़ियोंमें छिपकर वहां अपने प्राण त्याग करते हैं और शृगाल, कौवे आदिके आहार होते हैं । इसलिए हम लोग बारी बारीसे एक मृग रोज़ भेज दिया करेंगे । वह खुद ही आपके रसोई घरमें पहुंच जाया करेगा ।" उसके भ्राता विशाखने उत्तर दिया "अच्छा, इसी तरह कहा जायगा ।" संयोग वश काशिराज भी आखेटके निमित्त आ पहुंचे । खड्ग, धनुष आदि अस्त्र-शस्त्र धारण किये हुए, सैनिकों-द्वारा घिरे हुए काशिराजने दोनों यूथपति मृगराजोंको अपनी तरफ आते देखा । उनको निर्भय और निःसङ्कोच देख राजाने एक सेनापतिको आज्ञा दी कि 'देखो इन्हें कोई मारने न पावे । ये सैन्य देखकर दूर न भाग कर हमारी ही ओर आ रहे हैं, इससे मैं समझता हूं कि आज मुझसे इनका कोई अभिप्राय अवश्य है ।' सेनापतिने राजाकी आज्ञा पा अपनी सेनाको दाहिने बायें कर उन मृगयूथपतियोंके लिए रास्ता छोड़ दिया । इसके उपरान्त दोनों मृगोंने घुटनेके बल बैठ राजाको प्रणाम किया

राजाने उनसे पूछा कि तुम लोगोंका कौनसा काम है और क्या कहना चाहते हो? उन्होंने दिव्य-मनुष्यकी भाषामें राजासे निवेदन किया "महाराज! हम लोग कई सौ मृग आपके राज्यमें इस वनखंडमें रहते हैं। जिस प्रकार महाराजके नगर, पत्तन, ग्राम, आदि जनपद मनुष्य, गौ बैल, द्विपद चतुष्पदादि सहस्रों प्राणियोंसे सुशोभित होते हैं, ठीक उसी प्रकार वनखंड भी नदी, पर्व्वत, मृग, पक्षी आदिसे शोभित होते हैं। हम लोग महाराजको इस सब प्रपञ्चका अलङ्कार समझते हैं। सब द्विपद, चतुष्पद आपके ही अधीन वास करते हैं। वे चाहे ग्राममें, बनमें या पर्व्वत पर ही क्यों न रहें, किन्तु जब उन सबोंने आपकी शरण ली है तो आप ही उनका पालन करेंगे। महाराज ही उनके प्रभु हैं उनका कोई दूसरा स्वामी नहीं है। महाराज जब आखेटके निमित्त इधर आ पड़ते हैं तब व्यर्थ ही बहुतसे मृग एक साथ मर जाते हैं। जितने आपके मारे नहीं मरते उतने शर द्वारा घायल हो काटोंमें, कुशोंमें, झाड़ियोंमें घुस, निकल न सकनेके कारण, वहीं प्राणान्त करते हैं और फिर वे शृगाल कौवे आदिके आहार बन जाते हैं। इस कारण आपको भी अधर्म्मका भागी होना पड़ता है। यदि आपकी दया-युक्त आज्ञा हो तो हम दोनों मृगराज आपके भोजनार्थ प्रत्येक दिन एक मृग आपकी सेवामें भेज दिया करें। एक दिन एक यूथसे और दूसरे दिन दूसरेसे मृग आ जाया करेंगे। इससे आपको मांस भी भोजनार्थ मिल जाया करेगा, कोई विघ्न भी न होगा और एक साथ अनेक मृगोंकी भी मृत्यु न होगी।" काशिराजने मृगयूथपतिके प्रस्तावको स्वीकार कर

लिया और अपने मन्त्रीको सूचित कर दिया कि मेरी आज्ञानुसार इन मृगोंको कोई भी न मारे। राजाके चले जाने पर मृगराजोंने अपने अपने यूथको बुला कर उन्हें बतलाया कि राजा अब इस वनमें आखेट करने नहीं आवेंगे किन्तु हम लोगों को एक एक मृग उनके यहां भेजना पड़ेगा। इसके उपरान्त सब मृगोंकी गणना कर दो भागोंमें विभक्त किया गया। उस समयसे प्रतिदिन एक मृग नित्य राजाके पास जाने लगा।

एक समय राजाके यहां जानेके लिए विशाखके यूथमेंसे एक गर्भिणी मृगीकी बारी आयी। आज्ञापक (मृगों के सर्दार) ने निश्चित समय पर उसे जानेका आदेश दिया। गर्भिणी मृगीने सर्दारको समझाया और कहने लगी कि मेरे गर्भमें दो बच्चे हैं, उनके प्रसवके पीछे मैं तीन पारीका काम दे सकती हूं, इससे हमारा और आपका दोनोंका लाभ होगा। मृगोंके सर्दारने इस विषयकी सूचना यूथपतिको दी। यूथपतिने उसके बदले दूसरेको जानेकी आज्ञा दी। परन्तु मृगोंने एक २ करके इसका विरोध किया और कहा कि जब तक हमारी पारी नहीं आवेगी तब तक हममेंसे कोई भी जानेको तैयार नहीं है। गर्भिणी मृगीने दूसरे यूथमें (अर्थात् न्यग्रोधके यूथ) में जा यूथपतिके सम्मुख अपनी अभिलाषा प्रकट की। इस यूथमें भी वही दशा हुई। तब न्यग्रोध मृगराज दूसरे मृगोंको सम्बोधित कर कहने लगे "तुम लोग निश्चय समझो, जब मैं इस गर्भिणी मृगीको अभयदान दे रहा हूं तब इसके प्राणनाशका अवसर न आवेगा। मैं स्वयं इसके बदले राजाके निकट जाता हूं।"

मृगराज यह कहकर वनखण्डसे निकल वाराणसीकी

ओर चले । मार्गमें जिसने उनके अनिन्द्य सुन्दर रूपको देखा वही मोहित हो उनके पीछे २ चलने लगा । जनसमूहसे घिरे हुए मृगराजको चलते देख नगरनिवासी आपसमें कहने लगे "यही मृगोंके राजा हैं । मृगयूथके समाप्त हो जाने पर आज ये स्वयं राजाके निकट जा रहे हैं । चलो हम लोग भी राजाके निकट चलें और उनसे प्रार्थना करें जिसमें इन अलङ्कार स्वरूप मृगराजका वध न हो ।" मृगराजके रसोई घरमें प्रवेश करते ही नगर निवासी राजाके सम्मुख पहुंचे और मृगराजकी प्रशंसा करते हुए उन्होंने राजासे उनका प्राणदान मांगा । महाराजने मृगराजको रसोई घरसे तुरन्त बुलवा कर उनके स्वयं आनेका कारण पूछा । मृगराजने सम्पूर्ण वृत्तान्त कह सुनाया । मृगराजकी बात सुनकर महाराज और दूसरे सब लोग उनकी परम धार्म्मिकतापर विस्मित हो गये । महाराज मृगराजको सम्बोधित कर बोले "दूसरेके निमित्त जो अपने प्राण विसर्जित करता है वह कदापि पशु नहीं हो सकता; मैं ही पशु हूं क्योंकि मुझे कुछ भी धर्म्मका ज्ञान नहीं है । मृगीके निमित्त मैं तुम्हारे प्राण समर्पणका प्रण देख अत्यन्त प्रसन्न हुआ । तुम्हारे लिये मैं सब मृगसमूहको अभयदान देता हूं । जाओ तुम वहीं जाकर निर्भय वास करो ।" महाराजने ढिंढोरा पिटवा कर नगरवासियोंको इस बातकी सूचना दिलवा दी ।

यह सूचना देवलोक तक पहुंची । राजा इन्द्रने महाराजकी परीक्षाके लिए कई सहस्र मृगोंकी सृष्टि रची । काशी के नागरिकोंने उन मृगोंसे अत्यन्त कष्ट पाकर महाराजसे निवेदन किया ।

इधर जब मृगराज लौट आये तब उन्होंने मृगीको विशाखके यूथमें जानेके लिये कहा। मृगी बोली "मरूं या बचूं इसी यूथमें रहूंगी।" यही कह कर गाने लगी।

इसके बाद काशीकी ग्रामीण जनताने राजासे प्रार्थना की:—

"उदज्यते जनपदो राष्ट्रं स्फीतं विनश्यति।
मृगा धान्यानि खादन्ति तान् निषेध जनाधिप॥"

राजाने उत्तर दिया कि—

"उदज्यतु जनपदो स्फीतं राष्ट्रं विनश्यतु।
नत्वेवं मृगराजस्य वरं दत्वा मृषं भये॥"

अर्थात् देश उजड़ जाय और राष्ट्र नष्ट हो परन्तु मृगराज को वरदान देकर मैं झूठ नहीं बोलता

"मृगायां दायो दिन्नो मृगदायोति ऋषिपत्तनो।"

यह स्थान मृगोंको दान दिया गया था। अतः इसका नाम "मृगदाय ऋषिपत्तन" पड़ा। (३२)

अब यह प्रश्न उठ सकता है कि "दाय" शब्दका इस स्थानमें कौनसा अर्थ लिया जाय। चाइल्डर्सके पाली अभिधानमें इस 'दाय' शब्दका अर्थ वन लिखा है। (३३) सेनार्ट या और किसी वैदेशिक पण्डितने अब तक इसकी विवेचना नहीं की हैं। उन लोगोंने केवल न्यग्रोधमृगकी कथाहीका एक विशाल इतिहास लिखा है कि किस किस प्रकारसे

---

(३२) महावस्तु p. 366. इत्सिंग (Itsing) एवं अन्यान्य चीनदेशीय लेखकगणने :मृगदायका अर्थ "मिशुये" वा "मिशुलिन" किया है अर्थात् मृगोंको दी हुई वनभूमि।

(३३) See Childers Pali Dictionary p. 114.

परिवर्तित होकर वह प्राचीन ग्रंथोंमें दी गयी है (३४) हमारी समझमें तो इस स्थानका सबसे प्राचीन नाम मृगदाव (वन) था। बहुत मृगोंका विचरणक्षेत्र होनेके कारण ही इसे यह संस्कृत नाम दिया गया है। परन्तु कालक्रमसे और उच्चारणके दोषसे पाली भाषाके नियमानुसार यह शब्द 'मिगदाय' रूपमें परिणत हो गया। सम्भवतः उस समय भी इस शब्दका अर्थ 'वन' ही प्रसिद्ध था। तदुपरान्त जब बुद्ध भगवान् सम्बन्धी प्रत्येक विषयपर एक एक उपाख्यान रचनेका युग आया तब बौद्ध धर्म्म प्रचारकी आदिभूमि सारनाथ 'न्यग्रोध मृगजातक' का घटनास्थल माना गया। उसी समयसे 'दाय, शब्दका प्राचीन अर्थ विलुप्त हुआ और 'दाय' का दान अर्थ ही समस्त बौद्ध ग्रन्थोंमें व्यवहृत होने लगा। (३५) जान पड़ता हैं कि मोटे तौर पर मृगदाव या मृगदाय शब्दका यही इतिहास है।

सारनाथ नामकी उत्पत्ति

साम्प्रतिक 'सारनाथ' नाम कबसे और किस प्रकार प्रचलित हुआ इस विषयपर आज तक किसी भी देशी या विदेशी पंडितने विशेष आलोचना नहीं की है। सारनाथ नाम आधुनिक है, इस विषयके प्रमाणोंकी अवधि नहीं है।पहिले तो इस स्थानकी प्रसिद्धिके प्राचीनतम युगमें

(३४) Benfey's Panchatantra, p. 183. Also in the memoires of Hiwen Thsang (1. 36. 1) Jataka 1 149ff.

(३५) Some Literary References to the Isipatan by Brindaban Bhattacharya-The Indian Antiquary Vol XIV. p. 76.

इसका नाम मिगदाय था। सम्पूर्ण बौद्ध साहित्य, विशेषतः पाली साहित्यमें इस बातके यथेष्ट प्रमाण मिलते हैं। दूसरे जब तक यहां बौद्धोंका प्रबल प्रभाव था अर्थात् मौर्य्यवंशी राजाओं के, कनिष्कके और फाइहान तथा हुयेनसांग आदि चीनी यात्रियोंके आगमनके समय तक, यह स्थान इसिपतन मिगदायके ही नामसे परिचित था, यह निर्विवाद सिद्ध है। फिर जब यह बौद्धतीर्थ मुसलमानोंद्वारा नष्ट किया गया उस समय स्थानीय महादेव जीका मन्दिर वर्त्तमान न था, यदि होता तो यह भी नष्ट हुए बिना न रहता। सुतरां यह मानना चाहिये कि बौद्धोंके प्रबल प्रभावके लुप्त होनेके पश्चात्, जिस तरह बुद्धगयामें हिन्दू तीर्थ स्थापित हुआ, ठीक उसी तरह यह सारङ्गनाथ (सारनाथ) का मन्दिर भी बना। 'सारङ्गनाथ' शब्दका अर्थ मृगाधिपति होता है। इस स्थानका प्राचीन नाम 'मृगदाव' है एवं जातक आदि ग्रन्थोंके अनुसार बुद्ध भगवान ही उसके अधिपति थे। सुतरां हिन्दुओंने स्थानीय प्राचीन स्मृतिका अनुसरण कर जिस प्रकार बौद्धके त्रिरत्नको धम्मठाकुर रूपसे ग्रहण किया था,(३६) उसी प्रकार मृगाधिपति न्यग्रोध अथवा बुद्ध भगवानको सारङ्गनाथ महादेव नामसे पूजने लगे। (३७) यह पूजा कब-

(३६) यह पूज्यपाद श्रीयुक्त हर प्रसाद शास्त्री महोदयके मतानुसार है, N. N. Vasu's "Moderu Buddhism" में भी इसका अनेकांश व्यक्त हुआ है।

(३७) अनेक स्थानोंमें महादेवके बायें हाथमें मृग देख कर स्वभावतः यह मनमें होता है कि सारंगनाथ महादेव कहना उचित है; सारनाथके शिवमन्दिरके निकट जो एक तालाब है उसे "सारंगताल" कहते हैं।

से आरम्भ हुई इसका निश्चिय करना कठिन है। कहा जाता है कि काशीके निकट सारनाथ विहार उन्नतिशील बौद्धोंका प्रधान स्थान था। कदाचित् कुमारिल भट्टकी उत्तेजनासे ब्राह्मणोंने सारनाथ विहारको अग्निसे भस्मीभूत किया। कनिंघम, किटो, टामस आदिने इस स्थानसे अधजली धातु और जले हुए स्तूप निकाले हैं। (३८)।

यदि यह बात मान ली जाय तो यह अनुमान करना अनुचित न होगा कि जब शङ्कराचार्य्यके शिष्योंने शैवमतके स्थापनार्थ बौद्धधर्म्मके केन्द्र स्थानोंमें एक एक शिव मन्दिरकी स्थापना की तभी यह सारनाथ महादेवका मंदिर भी बना। अतः कहना होगा कि यह मन्दिरका ध्वंस आठवीं शताब्दीमें बना। बहुतसे पुरातत्व विशारदोंने सारनाथके विहारका ध्वंस मुसलमानों द्वारा ही माना है। इस मतके अनुसार संभव है सारङ्गनाथका मन्दिर सेनराजत्व काल समाप्त होनेके कुछ ही पहिले बना हो। काशीमें राजा लक्ष्मणसेनने अपना जयस्तम्भ लगाया था। उनके वंशधरगण शैव थे। सारङ्गनाथ नामका ही अपभ्रंश हो कर 'सारनाथ' वर्तमान स्थानके लिये प्रयुक्त हो रहा हैं।

---

(३८) "आदर्श गंभीरा" २४९ पृष्ठ (यह एक बंगला पुस्तक हैं माल्दहसे प्रकाशित हुई हैं।)

द्वितीय अध्याय

सारनाथका ऐतिहासिक वर्णन

भारतीय पुरातत्व या इतिहासके देखनेसे मालूम होता है कि सिकन्दरके आगमनसे पूर्वका भारतीय इतिहास अन्धकारसे आच्छन्न है उस समयका वृत्तान्त प्रायः प्रवादों और उपाख्यानोंसे परिपूर्ण है। अतः उसे प्रामाणिक इतिहास नहीं मान सकते। बौद्धसाहित्यसे अवतक जो कुछ मालूम हुआ है वह भी ऐतिहासिक परीक्षणसे यथेष्ट मूल्यवान नहीं ठहरता। इस बार हम भारतके इतिहासके साथ सारनाथकी कहानीका संक्षेपमें वर्णन करेंगे। यह विषय आधुनिक भूखनन कार्य्यके फलाफलके ऊपर ही निर्भर है, इस कारण अब तक वह पूर्ण नहीं कहा सकता।

अशोक द्वारा स्तम्भ निर्म्माण और सद्धर्म्म समाजकी स्थापना

इतिहास प्रसिद्ध राजाओंमें सबसे पहिले इस स्थानके सम्बन्धमें हम सम्राट् अशोकको ही पाते हैं। प्रियदर्शी राजाने अपने सुविस्तीर्ण साम्राज्यके प्रधान प्रधान स्थानोंमें चट्टानों और शिलास्तम्भोंपर बहुतसी "धर्म्म-लिपियां" (१) खुदवायी थीं। इस सारनाथ विहारमें भी विक्रमसे २६६ वर्ष पहिले एक "धर्म्म

(१) देवताओंके प्रिय प्रियदर्शी राजा अशोकने अपने अनुशासनोंको "धर्म्म लिपि" के नामसे प्रकाशित किया है। अशोककी पहली स्तम्भ-लिपि देखना चाहिये।

लिपि" किसी सुन्दर स्तम्भपर खोदी गयी थी। धम्मलिपि युक्त यह स्तम्भ वर्तमान भू-खनन द्वारा हो प्राप्त हुआ है। (२) लिपि पढ़नेसे कई विशेष ऐतिहासिक तथ्य प्रकाशित हुए हैं जैसे—उस समय बौद्ध संघमें धर्म्मबन्धन कितना शिथिल हो गया था। उसी सद्धर्मकी रक्षा करने वाले सम्राट् अशोकने संघमें आत्मकलह-कारियोंको श्वेत वस्त्र पहन कर संघच्युत करानेकी कठोर दण्डाज्ञा दी थी। सम्राट्ने अपने कर्म्म चारियोंको समझा दिया था कि यह आज्ञा विशेषभावसे मेरे साम्राज्यमें सर्व्वत्र प्राचारित हो। सांची और प्रयागको स्तम्भलिपिमें भी यही अनुशासन पाया जाता है। इस लिपिमें ऐसा भी लिखा है कि जनसाधारणको प्रत्येक "उपोसथ" उपवासके दिन इस विहारमें अवश्य आना चाहिए। इससे स्पष्ट है कि सम्राट् अशोक समस्त धर्म्म संघके नेता थे और संघमें किसी प्रकारकी त्रुटि होने पर वे यत्नपूर्व्वक उसका प्रतिविधान करते थे।

महाराज अशोकके सम्बन्धमें इस धर्म-लिपिको छोड़, एक और ऐतिहासिक निदर्शन भू-खननसे प्रकाशित हुआ है, जिससे यह प्रमाणित होता है कि सारनाथ विहारने विशेष-रूपसे महाराज अशोककी दृष्टिको आकर्षित किया था। सारनाथके खंडहरोंमें जिस स्थानपर अशोक-स्तम्भका शेषांश वर्तमान है उसके दक्षिणकी ओर एक ईंटसे बने हुए

---

(२) इस लिपिकी विस्तीर्ण आलोचना "आर्य्यावर्त्त" (बंगला मासिक पत्रिका) के चतुर्थ वर्ष वैशाख और ज्येष्ठके अंकोंमें की है। वह पंचम अध्यायमें लिखो है।

स्तूपका चिन्ह पाया जाता है। संवत् १८५०-५१ (सन् १७९३-९४ ईसवी) में वाराणसीके राजा चेतसिंहके दीवान बाबू जगतसिंहने जगतगंज मोहल्ला बनवानेके लिये इस स्तूपको तुड़वा कर उसके ईंट-पत्थर बुलवा मँगाये थे। इसी कारण आधुनिक पुरातत्व विभागके अधिकारियोंने सुविधाके लिए उस स्तूपके अवस्थितिस्थानको "जगतसिंह स्तूप" यह नाम दे रखा है और उन्हींके परीक्षणसे वह महाराजा अशोकका बनवाया प्रमाणित हुआ है।

सारनाथसे अशोकका सम्बन्ध बतलाने वाला तीसरा उदाहरण एक पत्थरका बना हुआ परकोटा (Railing) है। यह विहारके "प्रधान मन्दिर" (३) के दक्षिण वाली कक्षाके मूल भागमें सुविख्यात श्री अर्टेल (Mr. Oertel) द्वारा पाया गया है। वह अभी तक अपने प्राचीन स्थानपर वर्तमान है। इस परकोटेकी चिकनाहट और बनावटको विशेषता देख पुरातत्वज्ञ विद्वान् इसे भी महाराज अशोकके ही समयका बतलाते हैं। (४) डाक्टर वोगलके मतानुसार जिस स्थानपर बैठ कर बुद्ध भगवानने प्रथम धर्म्मचक्रप्रवर्त्तन किया था उस स्थान अथवा और किसी पुण्य स्थानको रक्षाके लिए यह वेष्टनी (परकोटा) निर्म्मित हुई थी। पुरातत्व विभागके राय बहादुर दयाराम साहनीका यह अनुमान है कि पहिले

(३) सुविधाके लिये इसे "Main shrine" कहते हैं।

(४) Catalogue of the museum of Archaeology at Sarnath. Intrduction, by Dr. Vogel. p.3. Guide to the Buddhist Ruins at Sarnath by Daya Ram Sahni. M. A. p. 11.

यह वेष्टनी अशोक स्तम्भके चारों ओर थी। पीछे यहां लाकर रक्खी गयी है। किन्तु अशोक स्तम्भके चारों ओर कोई वेष्टनी थी या नहीं इसमें उन्हें सन्देह है। भारत (Bharut) के स्तूपमें धर्माशोकके बनाये स्तम्भ तथा स्तम्भके चारों ओर वेष्टनीका प्रमाण पाया जाता है। (५) सुतरां यह अनुमान निस्सन्देह सत्य माना जा सकता है।

अतएव इन तीनों निदर्शनोंसे महाराजा अशोकका सारनाथके साथ घनिष्ठ सम्बन्ध पाया जाता है। हम समझते हैं कि धर्म्मात्मा अशोक सारनाथ विहारके दर्शनार्थ भी अवश्य आये थे। उन्होंने विक्रमसे ३०६ वर्ष पूर्व कुशिनगर, कपिलवस्तु श्रावस्ती, बुद्धगया इत्यादि स्थानोंकी तीर्थयात्रा की थी। इन सब तीर्थस्थानोंके साथ सारनाथका नाम नहीं पाया जाता। किन्तु यह असम्भव प्रतीत होता है कि सर्वप्रथम जिस स्थानपर बुद्ध भगवान्ने धर्म्म प्रचार किया था उस अति पवित्र और श्रेष्ठ स्थानको तीर्थयात्रा महाराज अशोकने न की हो। इस तीर्थयात्राके समय जिस जिस स्थानको महाराज अशोक गये उस उस स्थान पर उन्होंने एक एक शिलास्तम्भ निर्म्माण करवाया। सारनाथके धर्म्मलिपियुक्त स्तम्भको देख हम यह समझते हैं कि महाराज अशोक अपनी तीर्थयात्राके समय अवश्य सारनाथ महातीर्थमें भी आये थे। (६)

---

(५) भक्ति भाजन श्रीयुक्त राखालदास बन्द्योपाध्याय कृत "पाषाणकी कथा" पृष्ठ ४३

(६) श्री विन्सेन्ट स्मिथने महाराजा अशोकका सारनाथमें आना विना किसी प्रमाणके ही स्थिर कर लिया है। Early History of India p. 147.

शुंग राज्याधिकारके समय सारनाथ विहारमें शिल्पोन्नति।

सम्राट् अशोकको छोड़ और किसी भी मौर्य्य वंशीय राजाका चिन्ह इस सारनाथमें अब तक नहीं मिला है। मौर्य्य साम्राज्यके नष्ट होनेके पश्चात् विक्रमसे २४१ वर्ष पहिले महाराज पुष्यमित्रने शुङ्ग या मित्र साम्राज्यकी संस्थापना की। वे पूरे हिन्दू थे और भारतमें बौद्ध धर्मकी प्रबलताके विरुद्ध अश्वमेधादि यज्ञद्वारा एकं बार फिर ब्रह्मण्य-गौरव बढ़ानेमें अग्रसर हुए। बौद्ध-धर्म्मावलम्बी राजा मिलिन्द (Menander) के विरुद्ध भी उन्होंने तलवार उठायी थी। सुतरां ऐसे सम्राट् तथा उनके वंशधरोंका सारनाथके बौद्ध विहारके साथ सम्बन्ध होनेका कोई कारण नहीं। इसी हेतु उनके समयका कोई भी चिन्ह अब तक सारनाथमें आविष्कृत नहीं हुआ है, तथापि उनके समयकी एक दो वस्तुएं मिली हैं। जिस समय बौद्ध धर्मका बड़ा प्रभाव था उस समय बुद्ध भगवान्‌के परम भक्तगण चन्दा कर, पत्थर कटवा कर, बड़े बड़े स्तूप बनवाते और उनके ठीक मध्यमें बुद्ध भगवानकी हड्डीको रखते और उसी स्तूपमें बुद्ध, धर्म्म, और संघको एकत्र समझ महा भक्ति भावसे उसकी पूजा करते थे; उसी स्तूपके चारों ओर बड़े बड़े पत्थरोंका घेरा (रेलिंग) लगाते। खड़े खड़े खम्भोंके ऊपर मुडेरीके पत्थर लगाते और आड़े बलमें तीन तीन सूची (Cross Bars) लगाते। उस पर ऐसी पालिश करते कि हाथ रखनेसे पिछल जाता। प्रत्येक खंभे पर, प्रत्येक सूची पर और परकोटेके प्रत्येक पत्थरपर चन्दा देने

वालेका नाम अंकित रहता था। (७) ठीक इसी प्रकारके कई एक परकोटेके खम्भे इस सारनाथके अशोकस्तम्भके चारों ओर मिले हैं। इनपर भी ब्राह्मी अक्षरोंमे दाताओंके नाम खुदे हैं। यह निश्चय हो चुका है कि ये स्तम्भ शुङ्ग वंशीय राजाओंके समयमें बने थे। इसी आकारके वेष्टनी-स्तम्भ गयाजीमें हैं और वे भी इसी समयके हैं। (८) वेष्टनी-स्तम्भको छोड़ शुङ्ग समयके दो और चिन्ह हैं। "प्रधान मंदिर" के उत्तर पूर्व्वकी ओरसे मिला हुआ एक स्तम्भका ऊपरी भाग है (Catalogue No. D (g))। दूसरा चिन्ह मनुष्य-के सिरका एक टुकड़ा है। यह भी प्रधान मन्दिरके उत्तर पश्चिम कोणसे संवत् १९६३-६४ (सन् १९०६-७) में मिला था। इसका नम्बर है। [B. 1.] शुङ्गके परवर्त्ती कण्व वंशीय नरपतिगणके समयका कोई भी चिन्ह अभी तक वहिर्गत नहीं हुआ है।

सारनाथमें शक क्षत्रपका प्राधान्य।

कण्व राजवंशके अवसानसे पूर्व्व ही शकलोग पश्चिमोत्तर कोणसे भारतमें आये। विक्रमकी दूसरी शताब्दीमें शक राजागण प्रादेशिक प्रतिनिधि स्वाधीनता अवलम्बन कर "क्षत्रप" अथवा "महाक्षत्रप की उपाधि ग्रहण कर मथुरा तक्षशिला इत्यादि स्थानोंमें राज्य करत थे, ऐसा प्रतीत होता है। सोदास अथवा शोंडास अथवा सुडस-शोडास नामक

---

(७) "पाषाणकी कथा" पूज्यपाद श्री हरप्रसाद शास्त्री महाशयकी लिखी हुई भूमिका पृष्ठ ३.

(८) श्री राखालदास बन्द्योपाध्याय कृत "बंगालका इतिहास" पृष्ठ ३४.

क्षत्रपकी लिपि मथुरामें मिले हुए एक स्तम्भपर अंकित है। यह लिपि संवत् ६२ (सन् १५ ईसवी) की है। (९) ठीक इसी लिपिके अक्षरोंके अनुरूप अक्षरोंमें एक अश्वघोष नामक राजाकी लिपि भी अशोक स्तम्भपर लिखी मिलती है। (१०) सुतरां अनुमान किया जा सकता है कि विक्रमकी प्रथम शताब्दीके उत्तर भागमें किसी न किसी प्रकारसे शक जातीय क्षत्रपगणका अधिकार सारनाथ विहारपर था।

महाराजा कनिष्कके प्रतिनिधिद्वारा सारनाथका शासन।

विक्रमकी प्रथम शताब्दीके अन्तमें इयूचि वंशोद्भव कुशान लोगोंने शक राज्यका ध्वंस कर पश्चिम भारतमें कुशान राज्यका संस्थापन किया। इस वंशके राजाका नाम प्रथम कुजुलकदफिस (I Kadphises) था। उसका राज्य काबुल, गान्धार और इधर पञ्चनद तक था। उसके पुत्र 'विमकदफिस' का राज्य वाराणसी तक विस्तृत हो गया था। किन्तु मुद्रा आदिसे उसकी असीम शिवभक्ति देख कर यह अनुमान नहीं किया जा सकता कि बौद्ध वाराणसीसे उसका कोई विशेष सम्बन्ध था। भूखनन-से भी अब तक कोई उसके समयके चिन्ह नहीं मिले हैं। इसके बाद कुशानवंशके सबसे प्रसिद्ध नृपति कनिष्क राज्या-धिकारी हुए। अपने जीवनके प्रथम अंशमें अग्नि-उपासक

---

(९) Journal of the Royal Asiatic Society, 1845.525; 1904.703; 1908.154.

(१०) श्रीयुक्त राखालदास वन्द्योपाध्याय महाशयने इन अक्षरोंका सादृश्य दिखला दिया है "साहित्य-परिषत् पत्रिका", १३१२, चतुर्थ संख्या। राजा अश्वघोषकी एक छोटी सी लिपि सारनाथमें मिली है।

और अकवरके सदृश नाना देव-देवी उपासक होते हुए भी, अंतमें बौद्ध धम्मके प्रेमी हो उन्होंने बौद्ध धर्म्मकी उन्नतिका अनेक प्रकारसे यत्न किया। यही बौद्ध धम्मके "महायान" शाख के प्रतिष्ठाता हैं। जिस तरह अशोक 'हीनयान" मताव-लम्बियोंमें प्रख्यात थे, उसी तरह महाराजा कनिष्क भी महा-यान सम्प्रदायके बौद्ध गणोंके लिए प्रातःस्मरणीय भूपति हुए। इनका सारनाथ विहारके साथ विशेष सम्बन्ध था जिसके प्रमाण भी मिल चुके हैं। इनमें सबसे प्राचीन और अति वृहत् वोधिसत्वकी मूर्त्ति और उसके साथ तीन अंकित लिपियां इस विषयके अन्यतम प्रमाण हैं। इस लिपिके अनुसार यह मूर्त्ति महाराजा कनिष्कके तृतीय राज्याब्दमें स्थापित हुई था परन्तु दूसरा प्रमाण कहता है कि यह मथुरामें बनी और भिक्षु 'वल' तथा पुष्यवुद्धिद्वारा सारनाथ विहारको दी गयी थी। भिक्षु 'वल' के ऐसे ही दो लेख ओर भी मिले हैं, एक तो मथुरासे और दूसरा श्रावस्ती से। सारनाथकी इस लिपिसे भी स्पष्ट मालूम होता है कि "वाराणसी, (वनारस) नगर कनिष्कके साम्राज्यमें था और एक महाक्षत्रपके अधीन एक क्षत्रप यहांका शासन करता था। सम्भवतः महाक्षत्रप मथुरामें रहता था। भिक्ष 'बल' एवं पुष्यवुद्धि अवश्य महाराजाके माननीय थे। कारण शक जातीय महाक्षत्रप एवं क्षत्रपगण निश्चय ही बौद्ध भिक्षुओंके आज्ञाधीन नहीं थे। ये चीर धारण कर तीर्थाटनके समय एक एक स्थल पर एक एक मूर्तिकी स्थापना करते थे। (११) इस

(११) साहित्य-परिषत्-पत्रिका" चतुर्थ संख्या १७३ पृष्ठ।

प्रकार मालूम होता है कि महाक्षत्रपके अधीन एक क्षत्रपके हाथसे वाराणसीका शासन राजा अश्वघोषके समयसे चला आता है। कुशान नृपति कनिष्कने भी इस शक-प्रथाको प्रचलित रखा। महाराज कनिष्कको छोड़ वासिष्क, हुविष्क और वासुदेव इत्यादि कुशान वंशी राजाओंके समयका कोई चिन्ह अब तक इस सारनाथमें आविष्कृत नहीं हुआ है। अन्य प्रमाणानुसार यह ज्ञात हुआ है कि ये सब बौद्ध धर्म्मकी अपेक्षा हिन्दू धर्म्मके ही अधिक अनुरागी थे। इन सब राजाओंके नाम उल्लिखित न होने पर भी बहुत सी आविष्कृत बौद्धमूर्तियोंसे कुशान युगके प्रभावका पता चलता है।

गुप्ताधिकारमें सारनाथ की शिल्पोन्नति और फाहियानका वर्णन।

कुशान साम्राज्यके अधःपतनके पश्चात् विक्रम चतुर्थ शताब्दीके द्वितीय भागमें गुप्त साम्राज्यका अभ्युदय उत्तर भारतमें हुआ। प्रथम चन्द्रगुप्त, समुद्रगुप्त, द्वितीय चन्द्रगुप्त, कुमार गुप्त, स्कन्दगुप्त आदि गुप्तनृपतिगण स्वयं आनुष्ठानिक हिन्दू होने पर भी बौद्ध धर्म्मकी प्रतिपालनाके विरोधी नहीं थे। इनके साम्राज्यके नाना स्थानोंमें बौद्ध समाजकी रक्षाके लिए बहुतसा दान दिया जाता था। प्राचीन कालके हिन्दू नृपतिगण कदापि पर-धर्म्म-द्वेषी न थे। उदाहरण स्वरूप महाराजा पुष्यमित्र एक ओर अश्वमेध यज्ञादि करते थे और दूसरी ओर सारनाथ इत्यादि बौद्ध स्थानोंको नष्ट भी न करते थे। गुप्त नृपतिगण भी अश्वमेध यज्ञ करते थे परन्तु साथ साथ बौद्ध विहारोंकी भी सहायता करते थे। महाराज

हर्षवर्द्धनकी धर्म्म बुद्धि भी ऐसी ही उदार थी। (१२) सुतरां यह अनुमान होता है कि यद्यपि द्वितीय कुमारगुप्त-को छोड़ और किसी दूसरे गुप्त राजाओंकी लिपि इस सार-नाथमें आविष्कृत नहीं हुई है तथापि गुप्त समयमें बौद्ध धर्म्म-की उन्नतिमें कोई विघ्न भी नहीं हुआ। सारनाथके अधि-कांश भास्कर्य्य और स्थापत्यनिदर्शन गुप्त समयका ही परि-चय प्रदान करते हैं। विशेषज्ञोंने प्रकाण्ड "धामेक" स्तूप, "धर्म्म चक्र प्रवर्त्तन"--निरत बुद्ध मूर्ति तथा सारनाथ म्युजियमको अन्य प्रायः ३०० मूर्तियोंको गुप्त कालीन ही बतलाया है। इसी समयमें सारनाथकी मूर्तिशिलामें नवकला-पद्धतिका अवलम्बन किया गया। "प्रधान मन्दिरकी पत्थर वाली वेष्टनी (रेलिंग) परकी दो लिपि-योंसे एवं जगतसिंह स्तूप" के निकटवर्त्ती पत्थरको सोढ़ीपर-की एक लिपिसे यह मालूम होता है कि गुप्ताधिकार कालके प्रारम्भके पहिलेसेही 'सर्व्वास्त वादी" (१३) नामक होनयानों की एक शाखाका इस विहारपर आधिपत्य था। "सर्व्वा

(१२) इस बातको ऐतिहासिक विन्सेन्टस्मिथने बारबार स्वीकार किया है। "………the conduct of Harsha as a whole proves that like the most of the sovereigns of Ancient India, he was ordinarily tolerant of all the forms of indigenous religion and willing that all should share in his bounty." Imperial Gazetteer Vol VI p. 298.

(१३) भगवान बुद्धके निर्व्वाण प्राप्त करनेके २०० वर्ष पीछे वैशालीकी बौद्ध संगीतिके समयसे ही बौद्धगणोंके नाना सम्प्रदायका अभ्युदय हुआ। "सर्व्वस्तिवादि" नामक निकाय भी इसी समय रचित हुआ। निर्व्वाणके ३०० वर्ष पीछे इस सम्प्रदायका प्रधानशास्त्र "ज्ञानप्रस्थान सूत्र" रचा गया। महाराज कनिष्कके समय वसुमित्र इत्यादिने इसके ऊपर "महा-विभाग" नामक टीका लिखी। फाहियानने विक्रम ४५६-५७१ (३९०-४१४)

स्तिवादि" गणोंकी शक्ति लोप होने पर प्रायः चौथी शताब्दीसे सातवीं तक "सम्मितीय" नामक हीनयानोंकी एक दूसरी शाखा सारनाथमें प्रधान धर्म्म-सम्प्रदाय रूपसे प्रतिष्ठित थी। अशोक स्तम्भपर चौथी शताब्दीके अक्षरोंमें उनकी एक लिपि है। इसके सिवाय सातवीं शताब्दीमें चीन देशीय यात्री हुयेन सङ्गने सारनाथमें इसी शाखाके १५०० मनुष्योंको देखा था। (१४) और विक्रम पाँचवीं शताब्दीके द्वितीय भाग अथवा गुप्त वंशीय द्वितीय चन्द्रगुप्तके समयमें चीनी परिव्राजक फा-हियानने बौद्ध स्थानोंकी परिक्रमा कर जो विवरण लिखा है उसमें सारनाथका वर्णन इस प्रकार है—"नगरके उत्तर पूर्व्वकी ओर दश 'लि' की दूरी पर 'मृगदाव' संघाराम वर्तमान है। पूर्व्वकालमें इस स्थान पर एक 'प्रत्येक बुद्ध' रहते थे, इसी हेतु इसका नाम ऋषिपत्तन हुआ है। जिस स्थलसे भगवान् बुद्धको आते देख कर कौण्डिन्य आदि पंचवर्गीय इच्छा न होते हुए भी ससम्भ्रम उठ खड़े हुए थे, उसी स्थानपर बादमें लोगोंने एक स्तूप निम्माण कराया है और निम्नलिखित स्थलोंमें भी कई एक स्तूप निर्म्मित हैं।

मे लिखा है कि पाटलिपुत्रमें इसका अधिक प्रचार था। हुयेन संगने लिखा है कि कान्यकुब्ज इत्यादि तेरह स्थान इसी सम्प्रदायके अन्तर्गत थे। सप्तम से दशम शताब्दीके मध्यमें रचा गया 'तिब्बतीय विनय' भी इसी शाखाके अन्तर्गत है। इचिंग (६७१-६९५ ईसवी) ने लिखा है कि उस समय समस्त उत्तरीय भारत इसी शाखाका अवलम्बी था। इस शाखाके हीनयानी होनेपर भी इचिंग यह बात दबा गये हैं। उस समय हीनयान और महायानियोंमें समानताका व्यवहार था। इचिंगने इनके प्रति अपना अनुराग प्रकट किया है। Dr. Taka Kasu' Itsing p. XXI.

(१४) ६ष्ठ अध्याय देखिये।

१—पूर्व्वोक्त स्थानसे ६० पद उत्तरकी ओर, जिस स्थान-पर बुद्ध भगवान्‌ने पूर्वाभिमुख होकर कौण्डिन्य इत्यादिको उपदेश देनेके लिए धर्म्म-चक्र-प्रवर्त्तन किया था।

२—इस स्थानसे २० पद उत्तरमें, जिस स्थानपर बुद्ध भगवान्‌ने मैत्रेयको भविष्यत्‌में बुद्ध होनेका आशीर्व्वाद दिया था।

३—इस स्थानसे पचास पद दक्षिणकी ओर, जहांपर एलापत्रनागने बुद्ध भगवान्‌से नाग जन्मसे मुक्ति पानेके विषयमें प्रश्न किया था।

उपवनके मध्यमें दो संघाराम हैं और उसमें अद्यापि भिक्षुगण (सम्मितीय) वास करते हैं।" (१५)

गुप्त साम्राज्यके अन्तिम समयमें मूर्ति-प्रतिष्ठा।

छठवीं शताब्दीके पूर्व भागमें "हूण" के आक्रमणसे गुप्त साम्राज्य सहसा विध्वस्त हो गया। इसी कारण इस घोर दुःसमयमें सारनाथ विहारमें भी किसी प्रकारकी उन्नति नहीं हुई। किसी प्रकारके ऐतिहासिक चिन्होंका न मिलना भी इस बातका समर्थन करता है। फिर छठवीं शताब्दीमें गुप्त सम्राट् नरसिंह बालादित्यने "हूणों" को पराजित कर मार भगाया और गुप्त साम्राज्य फिर कुछ दिनोंके लिये सिर उठाये खड़ा रहा। इसी लिये गुप्त वंशीय शेष सम्राट् बालादित्यके पुत्र द्वितीय कुमार गुप्त और इनके वंशोद्भव प्रकटादित्यके दो एक चिन्ह सार-

(१५) श्रीयुत राखाल दास बन्द्योपाध्याय महाशयका संक्षिप्त अनुवाद।

नाथमें पाये जाते हैं । म्युज़ियमकी तालिकाकी B (b) 173 संख्यावाली बुद्ध मूर्तिकी चौकी पर इसी कुमारगुप्तकी एक क्षुद्र लिपि है। डाक्टर कोनो (Dr. Konow) साहवका अनुमान है कि यह सम्राट् प्रथम कुमार गुप्तके समयकी है। (१६) डाक्टर वोगल तो इसे गुप्त वंशीय ही स्वीकार नहीं करते। (१७) हमारा अनुमान है कि ये दोनों महाशय ही भूलते हैं। कारण सारनाथको नवाविष्कृत (सं० १९७२) तीन बुद्ध मूर्तियोंकी लिपिसे द्वितीय कुमार गुप्तके ठीक २ राज्यकाल तकका पता लगता है। (१८) सुतरां पूर्व्वोक्त लिपि द्वितीय कुमार गुप्तकी ही है अब इसमें कोई सन्देह नहीं। इस गुप्त नृपतिकी लिपिको छोड़ कर एक और प्रकटादित्य नामक गुप्त वंशीय नृपतिकी लिपि बहुत दिन पहिले हो इसी सारनाथमें मिल चुकी है। इस लिपिका विशेष वर्णन सुविख्यात डाक्टर फ्लीटके Corpus Inscriptionum Indicarum, Vol III नामक ग्रन्थमें हो चुका है। (१९) कोई कोई अनुमान करते हैं कि—प्रकटादित्य और प्रकाशादित्य एक ही व्यक्ति हैं। प्रकाशादित्यकी बहुत प्राचीन मुद्रा भारतके नाना स्थानोंमें मिल चुकी है। श्रीनगेन्द्रनाथ वसु

(१६) Archaeological Survey Reports, 1906-7, pages 89, and 9991, inscriptiou No. VIII

(१७) Sarnath Catalogue, p. 15, footnote.

(१८) इससे अब द्वितीय कुमारगुप्त तक गुप्त राज्यकालका होना निश्चय हो चुका, तदनुसार विन्सेन्ट स्मिथ और डाक्टर फ्लीटके लिखे हुये राजकालका परिवर्त्तन करना होगा। यह लिपि अब तक साधारणतः प्रकाशित नहीं हुई है।

(१९) C. I. I. p. 284.

प्राच्यविद्यामहार्णव महाशयका यह अनुमान है कि ये प्रकटादित्य द्वितीय कुमार गुप्तके भ्राता हैं और बालादित्यकी राजधानी वाराणसीमें ही प्रतिष्ठत थी। इससे उनके चिन्हका सारनाथमें मिलना कोई आश्चर्य्यका विषय नहीं है। "प्रकटादित्यकी शिलालिपिसे भी मालूम हुआ है कि उन्होंने इस स्थानपर 'मूरद्विष' नामक विष्णु मूर्त्तिकी प्रतिष्ठाकी थी और उसके लिए एक वृहत् देवमन्दिरका भी निर्म्माण कराया था। सम्भवतः इसी समयसे बौद्ध क्षेत्रको हिन्दू तीर्थमें परिणत करनेकी चेष्टा आरम्भ हुई। यहां (२०) विशेष ध्यान देनेकी बात यह है कि एक भाई द्वितीय कुमार गुप्तने तो बुद्ध मूर्तिकी प्रतिष्ठा की और दूसरे भाईने उसी स्थानपर विष्णु मूर्तिकी प्रतिष्ठा की, फिर भी दोनोंके बीच कोई भेद नहीं हुआ। क्या ही उदार गौरवमय धर्म्ममत उस समय भारतमें प्रचलित था।

हर्ष वर्द्धनके बनाये हुए स्तूपका संस्कार और हुयेन संगका विहार दर्शन।

गुप्त साम्राज्यके पूर्ण रूपसे अधःपतनके पश्चात् सप्तम शताब्दीके प्रथम भागमें स्थाण्वीश्वराधिपति हर्षवर्द्धन उत्तर भारतके सम्राट् हुए। वे भी कनिष्क, अकबर इत्यादिकी भांति नाना धर्म्ममतके पोषक और अनेकांशमें उपासक भी थे। बौद्ध धर्म्मके प्रति उनके अनुरागका यथेष्ट परिचय मिलता है। सारनाथमें भी उनकी बौद्ध-प्रीतिके दो एक चिन्ह मिले हैं

(२०) श्रीयुत नगेन्द्रनाथ बसु द्वारा सम्पादित "काशी-परिक्रमा" २४६ पृष्ठ।

"धामेक" स्तूपके पत्थर और ईंटोंकी परीक्षा कर पुरातत्व-विशारदोंने निर्धारित किया है कि इसका अधिकांश महाराजा हर्षवर्द्धनका बनवाया है । हम समझते हैं कि हर्षवर्द्धनको नामकी आकांक्षाका दमन कर अपना गौरव छिपाना ही भला प्रतीत होता था । इसी लिए हमलोगोंको उनका कोई विजय-स्तम्भ या कोई गौरव द्योतक प्रशस्ति नहीं मिलती । अनुमान होता है कि सारनाथमें भी उनके नामकी कोई लिपि न होनेका कारण भी यही है । हर्षवर्द्धनके समयमें ही विख्यात चीन देशीय परिव्राजक हुयेन सङ्ग भारतमें आये थे । उनका लिखा हुआ सारनाथका वर्णन इस प्रकार है "राजधानीके उत्तर पूर्व्वकी ओर वरणा नदीके पश्चिमकी तरफ महाराज अशोकका बनाया हुआ एक स्तूप है । यह प्रायः एक सौ फुट ऊंचा है । इस स्तूपके सामने एक शिला स्तम्भ है । वरणा नदीके उत्तर पूर्व्व दश 'लि' की दूरी पर लूये, (मृगदाव) संघाराम वर्तमान है, यह आठ भागोंमें विभक्त है और प्राचीर (चहारदीवारी) से घिरा है । इस स्थलपर हीनयान सम्मितीय मतावलम्बी १५०० भिक्षु वास करते हैं । इस प्राचीर-वेष्टनीके मध्यमें एक २०० फुट ऊंचा विहार है । इस विहारकी भीत और सीढ़ियां पत्थरकी बनी हैं किन्तु ऊपरी भाग ईंटोंका बना है । इस विहारमें धम्मंचक्रप्रवर्त्तन मुद्रामें बैठी हुई तामेकी एक बुद्ध-मूर्त्ति प्रतिष्ठित है । विहारके दक्षिण पश्चिममें राजा अशोकका बनाया हुआ एक पत्थरका स्तूप है. इसकी भीत भूमिमें दब जानेपर भी आज १०० फुट ऊंची है । इसी स्थान पर ७० फुट ऊंचा एक शिला-स्तम्भ है ।

इसकी शिला स्फटिककी भांति उज्ज्वल है, इसके सम्मुख हो जो कोई प्रार्थना करता है, उसकी की हुई प्रार्थनाका समय समयपर यहां शुभ या अशुभ चिन्ह दिखलायी पड़ता है। इसी स्थानपर तथागतने संबुद्ध होकर धर्म्मचक्रप्रवर्त्तन करना आरम्भ किया था। × × × इसी स्थलके निकट एक स्तूप बना है जहां पर मैत्रेय बोधिसत्वने भविष्यत्‌में संबुद्ध होनेका आशीर्वाद प्राप्त किया था। प्राचीनकालमें तथागत जब राजगृहमें वास करते थे, उस समय उन्होंने भिक्षुगणोंसे कहा था कि—"भविष्यमें जब यह जम्बूद्वीप शान्तिपूर्ण होगा तब मैत्रेय नामक एक ब्राह्मण जन्म लेंगे। उनका शरीर पवित्र और स्वर्ण-कांति वाला होगा। वे गृह त्यागकर सम्यक् सम्बुद्ध होंगे और सर्व्व जीवोंके उपकारके लिए त्रिविध धर्म्मका प्रचार करेंगे।" इस समय मैत्रेय बोधिसत्व अपने आसनसे उठकर बुद्धसे बोले कि यदि आप अनुमति दें तो मैं ही उस मैत्रेय बुद्ध रूपका जन्म ग्रहण करूं, इस पर बुद्ध भगवान्‌ने उत्तर दिया "एवमस्तु" अर्थात् ऐसा ही होगा संघारामसे पश्चिमकी ओर एक पुष्करिणी है। इसी स्थानपर तथागत समय समयपर स्नान करते थे। इसके पश्चिममें एक और वृहत् पुष्करिणी है। इसमें बुद्ध भगवान् अपना भिक्षा पात्र धोते थे। इसके उत्तरमें एक और जलाशय है जहां बुद्धभगवान् अपना वस्त्र धोते थे। इसीके पास एक वृहत् चतुष्कोण पत्थर है जिस पर अब तक उनके काषाय वस्त्रका चिन्ह है। इस स्थानसे थोड़ी दूर पर विशाल वनके बीच एक स्तूप है। इसी स्थानपर देवदत्त एवं बोधिसत्व प्राचीनकालमें मृगयूथपति थे। (इसका वर्णन प्रथम

अध्यायमें किया जा चुका है इस हेतु इस स्थानपर कोई आवश्यकता नहीं) संघारामसे २।३ 'लि' दक्षिण पश्चिमकी ओर ३०० फुट ऊंचा एक और स्तूप है ।" (२१)

सम्राट् हर्षवर्द्धनके देहावसानके पश्चात् उनका राज्य छिन्न भिन्न हो गया, उत्तर भारतमें अराजकता फैल गयी। राज्य-लोलुप छोटे छोटे प्रादेशिक नृपतियोंने साम्राज्यकी लालसासे आत्मविरोधकी सृष्टि की अतः वे सर्व्वनाशको प्राप्त हुए । किन्तु इस राष्ट्रीय विक्षोभके दुःसमयमें भी सारनाथ बौद्ध विहारने अपने सद्धर्म्मगौरवकी रक्षाकर दूरके तीर्थयात्रियोंका चित्त-हरण कर रखा था । चीनके परिव्राजक इचिंग (Itsing) का कथन इसे पुष्ट करता है । उनने आठवीं शताब्दी (विक्रम) के प्रथम भागमें स्वदेशसे अपनी यात्राका आरम्भ किया। यात्रारम्भके पूर्व्व उन्होंने कहा था " कि मेरी यही इच्छा है कि मैं अपने समयका विशेष भाग उसी दूरस्थित मृगदावकी कथा सुननेमें व्यय करूं ।" यहां आकर भिक्षुगणके कमण्डल, पानपत्र, परिच्छद, छत्र आदि व्यवहार सामग्रीका वर्णन करते हुए उन्होंने कहा है कि राजगृह, बोधिद्रुम, गृध्र शैल, मृगदाव तथा सारसके पंखोंके समान श्वेत शालवृक्षोंसे परिपूर्ण उस पवित्र स्थान एवं गिलहरियोंसे युक्त उस उप-

इचिंगका कथन

(२१) श्रीयुत राखालदास बन्द्योपाध्याय महाशयका अनुवाद Compare Hiuen-T-sping translated by Beal Vol II pp 46-61 also by Watters, Vol II pages 45-54 and a Record of the Buddhist Religion, p 29 Introduction XX iX By It sing by Taka-Kasi

वनकी समाधिभूमिमें यात्रा करते समय अनेक देशोंके यात्री तथा भिक्षु नाना दिशाओंसे आकर प्रतिदिन पूर्व्वोक्त भावसे समवेत होते थे" । इचिङ्गने भारत वर्षके विभिन्न स्थानोंमें प्रचलित बौद्ध मतका जो विवरण दिया है उसे पढ़नेसे मालूम होता है कि उस समय सारनाथमें पुनः सर्वास्तिवादियोंका स्वत्व था ।

तीसरा अध्याय ।

मध्ययुगमें सारनाथकी अवस्था ।

महाराज हर्षवर्द्धनका देहावसान होते ही भारत घोर दुर्दशाको प्राप्त हुआ। प्रधान शक्तिके अभावसे उत्तर भारत अराजकताके कारण खण्ड खण्ड राज्योंमें विभक्त हो गया। प्रायःतीन शताब्दी (७०७--१००७) (६५०--९५० ईसवी) तक यह अराजकता कम नहीँ हुई। दशवीँ शताब्दीके मध्य भागमें अलवत्ता हमें थोड़ेसे सुदृढ़ राज्योंका पता लगता है। किन्तु बारहवीँ शताब्दीके मुसलमानी आक्रमणोंसे प्रायः सभी हिन्दू राज्य अन्तिम दशाको पहुंचे। इन छः शताब्दियोंके भीतर बाहरसे भी कोई अहिन्दू आक्रमणकारी आर्य्यावर्त्तको विध्वस्त करनेके लिए नहीं आया। इस कारण इसी समय हिन्दू धर्म्ममें नाना प्रकारके संस्कार हो सके। हिन्दू धर्म और बौद्ध धर्म्ममें कई प्रकारकी समानता हो गयी थी। इस युगकी बनी मूर्तियोंको निश्चित रूपसे स्थिर करना कि कौन हिन्दू और कौन बौद्ध है, कभी कभी असम्भव हो जाता है। इस विषयके कई दृष्टान्त सारनाथमें मिले हैं। मध्ययुगमें उत्तर भारत हिन्दूराजाओंके आधिपत्यमें

होने पर भी इस सारनाथ विहारके धर्म्म और शिल्पोन्नतिमें किसी प्रकारकी कमी नहीं हुई। इस युगमें सारनाथमें वहुतसे चैत्योंके बनने तथा विदेशीय यात्रियोंके आनेका पता हमें लगता है। स्थविरगणोंकी धर्म्म चर्चा, विहारके विविध संस्कारोंका हाल, वहांके शिल्प, लिपि तथा समकालीन इतिहासका ज्ञान भी हमें प्राप्त होता है। सारनाथ-विहारके इतिहासकी खोज विशेष कर उस समयके शिल्प, तथा धर्म एवं राजाके कर्मोंके सहारे हो सकती है। हम सारनाथका यह मध्यकालीन इतिहास क्रम क्रमसे स्पष्ट करनेकी यथासाध्य चेष्टा करेंगे।

सारनाथमें परिव्राजक ताई-संका आगमन।

विक्रमकी आठवीं शताब्दीके अन्तमें उत्तर भारतमें केवल कान्यकुब्ज (कनौज) का राज्य सब राज्योंसे प्रवल था। वाक्‌पति कविके "गउड़वंश" नामक काव्यसे उक्त देशके राजा यशो वर्माके राज्यकी सीमा निश्चित की जा सकती है। उससे स्पष्ट है कि वाराणसी और बौद्ध वाराणसी कान्यकुब्ज राज्यके ही अन्तर्गत था। (१) यशोवर्म्माने संवत् ७८८ (७३१ ईसवी) में अपना एक दूत चीन देशको भेजा। यद्यपि उन्होंने वैदिक मार्गके पुनरुद्धार करनेका असीम यत्न किया था और उनके यत्नसे वाराणसी धाम वेद चर्चाका एक प्रधान स्थान भी

(१) Although confined to the doab and southern Oudh as for as Benares it (the kingdom of kanauj) still......" Imp. Gaz: Vol II p. 310.

हो गया था (२) तथापि सारनाथ विहारकी उन्नतिमें किसी भी प्रकार की वाधा उपस्थित न हुई। सारनाथकी कीर्ति सुन कर सुदूर चीन देशसे एक 'ताई-सं' नामक परिव्राजक संवत् ८५१ में महाबोधि विहार देखनेके लिये वाराणसी (Po-lo nisen) अथवा मृगदावके अन्तगत ऋषि-पत्तनमें आये थे। उन्होंने लिखा है कि इसी स्थानपर बुद्ध-भगवान्ने धर्म्म चक्रप्रवर्त्तन किया है। (३) इन चीनी-परिव्राजकके पहिले भी एक दूसरे 'वांग-हुये-सि' नामके परिव्राजक सं० ७१४ विक्रम (६५७ ईसवी) में भारत आये थे किन्तु उनके लिखे हुए वर्णनमें 'मृगदाव' का कोई भी उल्लेख नहीं मिलता। (४)

नवीं और दशवीं शताब्दीमें सारनाथकी अवस्था।

यशोवर्म्माकी मृत्युके पीछे यथाक्रमसे वज्रायुध और इन्द्रायुध कान्यकुब्जके सिंहासन पर बैठे। वे वैदिक या हिन्दू धर्म्मको नहीं मानते थे। इससे यह अनुमान किया जाता है कि वे बौद्ध धर्म्मके ही अधिक प्रेमी थे। सुतरां उनके समय वाराणसीके अन्तर्गत इस सार-नाथ विहारको अनेक प्रकारसे उन्नतिका सुयोग प्राप्त हुआ। नवीं शताब्दीके तीसरे चरणमें पाल नृपति धर्म्मपाल इन्द्रायुधको सिंहासनसे उतार स्वयं सिंहा-

---

(२) श्रीयुक्त नगेन्द्रनाथ बसु प्राच्यविद्यामहार्णव महाशयकी "काशी परिक्रमा" पृष्ठ २१९

(३) Journal Asiatique, 1895 Vol II p p. 356-366.

(४) Levi's article Les missions de Wang-Hiuentse dans " Inde I. A 1900

सनारूढ़ हुए। बौद्ध नृपति धर्म्मपालने उसके बाद चन्द्रायुधको कान्यकुब्ज राज्यका अधीश्वर बनाया। किन्तु चन्द्रायुध का राज्यकाल स्थायी न रह सका। संवत् ८६७ में गुर्ज्जर राधा नागभटने उसे सिंहासनसे उतार कर कान्यकुब्जमें अपने वंशके राज्यको प्रतिष्ठा की। इस वंशके तृतीय नृपति महापराक्रमशाली मिहिर भोज अथवा प्रथम भोज अथवा प्रथम भोजदेव चित्रकूट गिरिदुर्गसे चल कर प्रायः ९०० वि० में कान्यकुब्ज (कन्नौज) को स्वाधीन किया (५) "आदि वाराह" उपाधिधारी इस भोजका सुविस्तृत साम्राज्य सारे आर्य्यावर्त्तमें फैला हुआ था। (६) अतः यह स्थिर है कि सारनाथका बौद्ध विहार भी कुछ समयके लिये इन्हींके अधीन था। ये निष्ठावान हिन्दू थे। (७) किन्तु इन्होंने बौद्धधर्म्मके प्रति कदापि विद्वेष प्रकट नहीं किया। कारण, उन्हीं के राज्यकालमें देवपालके भ्राता, एवं प्रथम विग्रह पालके पिता, महायोद्धा जयपालने इस सारनाथमें दश चैत्य निर्म्माण कराये थे। सारनाथमें प्राप्त उनकी लिपिसे भी यही बात मालूम हुई है। (८) जयपाल वाक्-

(५) बंगालका जातीय इतिहास (राजन्य कान्त) १९२ पृ०

(६) V. A. Smith's Early History of Iudia (2ud Edition) p. 350.

(७) भोजदेव गुर्ज्जर प्रतिहार वंशोद्भव कहते हुए कोई कोई अनार्य्य सम्भूत कहेंगे। किन्तु उनके पुत्रके गुरु राजशेखरने महेन्द्रपालको रघुकुल चूड़ामणि कह परिचय कराया है। कविको इस विषयमें मिथ्यावादी कहना उचित नहीं है।।

(८) Sarnath museum Catalogue No. (f) 59. षष्ठ अध्याय देखिये।

पालके पुत्र थे। इन्होंने देवपालको शत्रुदमनमें तथा अपना राज्य विस्तृत करनेमें बड़ी सहायता दी थी। उन्होंने प्राक्-ज्योतिषपुर और उत्कलके दो राजाओंका दमन किया था। (९) और छन्दोगपरिशिष्ट-प्रकाशकार नारायण भट्टने इन्हीं जयपालका परिचय उत्तरके अधिपतिके रूपमें दिया है। (१०) उन्होंने महापण्डित उमापतिको पितृश्राद्धके समय महादान दिया था। अब इस स्थानपर यह ध्यान देने योग्य बात है कि कहां तो इधर हिन्दू कर्तव्य पितृश्राद्ध. और उधर बौद्ध विहारमें चैत्यनिर्माण! परन्तु हम पूर्व्व ही कह आये हैं कि उस समय हिन्दुओं और बौद्धोंमें कुछ विरोध न था। इतिहासमें जयपालका समय नवीं शताब्दी (ईसवी) का शेष भाग है। सारनाथमें प्राप्त उनकी लिपि भी इसीका समर्थन करती है। संवत् ६४७ विक्रमके करीब, भोजकी मृत्युके थोड़े ही समय पीछे, गौड़के विग्रहपालने अल्प समयके लिए कान्यकुब्ज प्रदेशपर अधिकार कर अपने नामके रुपये चलवा दिये। (११) अतः यह स्पष्ट है कि ईसाकी नवीं और दशवीँ शताब्दीमें प्रायः उत्तर भारतमें गुर्ज्जर और पाल दोनोंका राज्य था। सुतरां, वाराणसी एवं सारनाथ विहार कभी तो पाल राजाओंके और कभी कान्यकुब्जाधिपोंके अधिकारमें रहा। परन्तु यह निश्चित है कि वह दीर्घकाल-

(९) गौड़, लेख माला पृ० ५६-५८, श्रीयुक्त रमा प्रसाद चन्द्र कृत गौड़ राजमाला, २९ पृष्ठ।

(१०) श्रीयुक्त राखालदास बन्द्योपाध्याय कृत "बंगलाका इतिहास" पृ० १८५।

(११) "बंगेर जातीय इतिहास' (राजन्य कान्त, १६५ पृष्ठ।)

४

तक कान्यकुब्जोंहीके राज्यमें था । भोजदेवके उपरान्त उनके पुत्र पराक्रमशाली महेन्द्रपाल ही कान्यकुब्जके राज्य सिंहासन-पर आरूढ़ हुए । गया आदि स्थानोंमें मूर्ति-प्रतिष्ठा इत्यादि सम्बन्धी उनके अनेक सत्कार्य्योंके चिन्ह प्राप्त हुए हैं । (१२) उन्होंने अपने बाहुबलसे बहुत दूरतक साम्राज्यको विस्तृत किया था, । पंचनदके आगे पश्चिम समुद्रसे मगधपर्य्यन्त समग्र उत्तर भारत उनके अधीन था । दी हुई कई लिपियोंसे तथा उनके गुरु, राजशेखरद्वारा लिखी हुई कर्पूरमञ्जरीसे भी यही बात प्रकट होती है । (१३) इसलिए अब इसमें सन्देह नहीं कि यह सारनाथ भी उनके अधिकारमें अवश्य था । दशवीं शताब्दीके प्रथम भागमें महेन्द्रपालकी मृत्युके साथ ही साथ इधर तो कान्यकुब्ज राज्यके अधःपतनका सूत्रपात हुआ और उधर देवपालकी मृत्युसे गौड़राज्यका गौरव भी अस्ताचल गामी हो गया । "इन दो पराक्रमी राज्यों-के अधःपतनकी सूचना मिलते ही उत्तरापथके अधःपतनका सूत्रपात हुआ । मुइज्जुद्दीन मुहम्मद गोरीद्वारा उत्तरापथ विजित होनेमें इस समय भी प्रायः तीन सौ वर्ष बाकी थे । किन्तु उत्तरापथका इन तीन सौ वर्षोंका इतिहास तुर्की विजेताका समादर करनेके प्रयत्नकी एक लम्बी कहानीमात्र है । (१४) महेन्द्रपालके पीछे दशवीं शताब्दीमें कन्नौजके सिंहासनपर द्वितीय भोज, महीपाल, देवपाल और विजयपाल

(१२) "बंगालका इतिहास, प्रथम भाग २०१ पृष्ठ ।

(१३) 'कर्पूरमंजरी' प्रथम जवानिकानन्तर

(१४) गौड़राज माला, ३२ पृष्ठ ।

इत्यादि नरपतिगण आरूढ़ हुए। किन्तु इनके राज्यकाल-में राष्ट्रकूट वंशके विशाल प्रभाव और चन्देलवंशीय राजाओं-के अभ्युदय करनेमें कान्यकुब्ज राज्यकी क्रमशः क्षतिश्री हुई। अल्पकालके लिए दो एक बार कान्यकुब्ज राष्ट्रकूटके अधीन भी हुआ था। इधर गौड़राज्यकी भी यही दशा थी। देव-पालके पीछे राष्ट्रकूट काम्बोजोंके बार बार आक्रमणसे गौड़ राज्य अवनतिके पथपर अग्रसर हुआ। सारनाथ विहार इतने दिन कान्यकुब्ज राज्याधिकारमें रहकर भी तान्त्रिक बौद्ध मतावलम्बी पाल नृपतिगणके विविध साहाय्य और आश्रयके लाभ उठानेसे वञ्चित न रहा। किन्तु दशवीं शताब्दीमें इन दो राज्योंकी हीन दशाने सारनाथको भी अधःपतनकी सूचना दे दी। ग्यारहवीं शताब्दीमें बौद्ध समाजके विहार और गन्धकुटीके प्रति अनादर और शिल्प-सामग्रीकी निबलताने महापालकी दृष्टिको आकर्षित किया। दशवीं शताब्दीसे पूर्व्व ही बौद्ध समाजको तान्त्रिकताने अनेक दोषोंसे संयुक्त कर अवनतिका पथ दिखला दिया था, जिसका संक्षेपसे वर्णन नीचे दिया जाता है।

सारनाथ विहारमें बौद्ध तान्त्रिकताका प्रभाव।

यह तो पहलेसे ही ज्ञात है कि बौद्ध धर्म्ममें प्रधानतः दो सम्प्रदाय हो गये थे—एक हीनयान और दूसरा महायान। इनमें हीनयान पहिलेका और महायान पीछेका सम्प्रदाय था। साधारणतः पुरातत्वज्ञोंके मतानुसार महायान मत नागार्ज्जुनके समयसे आरम्भ हुआ, किन्तु और प्रमाणोंको देखनेसे यह मालूम हुआ

है कि यह मत और भी पहिलेसे चल निकला था। (१५) वैशालीके बौद्ध संगीतके समय दो दलोंकी सृष्टि हुई—एक स्थविरवाद और दूसरा महासांघिक। ये महासांघिक-गण ही कुछ समय पीछे महायान वाले हो गये। नैपालियों-के देवभाजू और गुभाजू धर्म्मोंको देखनेसे भी महायानियों-की प्रकृति समझ पड़ती है। (१६) सारनाथ विहार बौद्ध धर्म्मकी आदिभूमि है इसलिए हीनयान और महायान दोनोंके लिए पूज्य है। इसीलिए महाराजा कनिष्कके पीछे महाराजा हर्षवर्द्धनके समयतक हीनयानीय सम्मितीय और सर्व्वास्तिवादिगण एवं महायानीयगणके सारनाथमें निर्विरोध वास करनेका अनेक प्रकारसे पता लगता है। ईसाकी आठवीं शताब्दीसे बौद्ध धर्म्मके अधःपतनके आरम्भ होनेके साथ साथ महायान सम्प्रदायमें तान्त्रिकता भी प्रविष्ट हुई। (१७) हिन्दुओंकी गूढ़ रहस्यमयी तान्त्रिकताको ग्रहण करके बौद्धगण प्रकृत साधनपथपर अग्रसर न हो सके। साँपसे खेलनेके प्रयत्नमें बौद्धोंके हितके स्थानमें अहित हो गया। महायानीय लोग तान्त्रिक मन्त्रतन्त्रोंका अपव्य-वहार करके नैतिक अवनतिके साथ साथ धर्म्मके अनेक अंगोंकी उपासनामें लग गये। बौद्ध योगियोंमें वह पूर्व्व

---

(१५) अश्वघोषकी ग्रन्थावली, लङ्कावतार इत्यादि महायान मतसे पूर्ण हैं।

(१६) महामहोपाध्याय श्रीयुक्त हरप्रसाद शास्त्री सी० आई० ई० महोदयका "बौद्धधर्म्म" प्रबन्ध, नारायण, श्रावण, १३२१ एवं N. N. Vasu's Modern Buddhism, Introduction P. 24.

(१७) H. Kern's Manual of Buddhism P. 133.

समयकी चरित्रकी शुद्धता, मनकी निमलता न रही। इसी लिये हम महाराज हर्षके समयमें लिखे हुए 'नागानन्द' में, यशोवर्म्माके समयमें लिखित 'मालती माधव' में, एवं महेन्द्रपालके समयमें लिखित 'कर्पूरमञ्जरी' में बौद्ध तान्त्रिकताका, तथा भैरव भैरवीकी भीषणताका विवरण देखते हैं। ईसाकी सातवीं शताब्दीसे महायानियोंका योगाचार सम्प्रदाय क्रमशः मन्त्रयानमें परिणत हो गया (१८)। नवीं शताब्दीमें मन्त्रयानमत विक्रमशिला आदि स्थानोंमें सर्व्वजनगृहीत हुआ था। इस धर्म्मकी 'आदि कर्म्मचरण' आदि पुस्तकें भी इसी समयमें रची गयीं। दशवीं शताब्दीमें मन्त्रयानके अन्तर्गत कालचक्रयान (१९) से वज्रयान (२०) नामक एक भीषण मतका जन्म हुआ। यह मत नैपाल और तिब्बतमें श्रेष्ठ पदको पहुंचा था। (२१) महायानियोंकी सब शाखाओंमें अनेक देवदेवियोंकी पूजा प्रचलित थी। उन्होंने हिन्दुओंसे जिस तरह तान्त्रिकता ग्रहणकी थी उसी

---

(१८) Modern Buddhism p.p. 3, 4,

(१९) Waddel साहब इस बातको भूत पिशाच Demotrnology विद्या बतलाते हैं। बात भी सत्य है। इसमें बुद्ध तकको पिशाच रूपसे मानते हैं। नैपालका बौद्धमत साधारणतः इसी बातके अन्तर्गत है।

(२०) इस पथकी उपासना मद्यावित्त और विवाहित बौद्धगणमें प्रचलित थी। काम लोकसे रूपलोकमें जाना होगा। और आगे चलेंगे तो अरूप लोक मिलेगा। वहां निरात्मा देवीसे मिल जाते ही निर्व्वाण प्राप्त होगा। यही इनकी मूल कथा है।

२१) Grunwedel's mythologie des Buddhismus, pp, 51, 94, 100,101.

प्रकारके तंत्रोक्त देव देवियोंको अपने देव और देवी मानकर पूजते थे । तारा, चामुंडा, वाराही आदि देवियां हिन्दुओंके पुराणों और तन्त्रोंमें, बहुत दिनोंसे पूज्य मानी जाती हैं । मन्त्रयान और वज्रयान सम्प्रदायोंने सम्भवतः इनको ग्रहण करके अनेक स्थलोंमें इनके नामों और रूपोंको वदल दिया है । यथा-जङ्गलीतारा, वज्रवाराही, वज्रतारा, मारीची इत्यादि भीषण देवियोंकी तो एक दम नयी सृष्टि करदी है । (२२) और यह भी अस्वीकार नहीं किया जा सकता कि हिन्दुओंने फिर इनसे अनेक देव देवियोंकी मूर्तियां उधार ली हैं । मञ्जुश्री, अक्षोभ्य, अवलोकितेश्वर प्रभृति मूर्तियां महायानियोंकी अपनी हैं और इन सबकी पूजा कुशान और गुप्त-युगमें भी वर्तमान थी । परवर्त्तीकालके हिन्दुओंने मञ्जुश्रीको, मञ्जुघोष, बौद्ध अक्षोभ्यको शिवा वा ऋषि, वत्तालीको वार्त्ताली रूपसे चुपचाप ग्रहण कर लिया है । (२३) बौद्धोंका तान्त्रिक प्रभाव भारतके अनेक बौद्ध स्थानोंमें पहुंचा था, इस 'सारनाथमें भी हमें बहुत सी बौद्ध शक्ति मूर्तियां दिखलायी पड़ती हैं । यथा तारा न० B (f) 2, B (f) 7, वज्रतारा न० B (f) 6, मारीची न० B (f) 23 । ये सब मूर्तियां निश्चय ही पालराजाओंके प्रभावसे नवीं

(२२) Taratantra (V.R.S.) Introduction by Pandit Akshay Kumar Maitra B.L, p. 11, 21.

(२३) Introduction to Modern Buddhism by M. M, Haraprasad Shastri C.I.E.p. 12 and N.N. Vasu's Archaeological Survey of Mayurvanja Vol. I. Introduction p. XCV Taratantra, Introduction p.14.

और दशवीं शताब्दियोंमें बनी थीं। पाल नृपतिगण सम्भवतः मन्त्र-वज्रयानके उपासक थे, उनके द्वारा मंत्रयानके केन्द्र रूप विक्रमशिला विहारके निर्म्माण और तारानाथके कथनसे भी इसका प्रमाण मिलता है। (२४) अतएव यह सिद्धान्त प्रायः स्थिर है कि नवीं और दशवीं शताब्दियोंमें इस धर्म्मचक्र विहारमें मन्त्रयान और वज्रयान सम्प्रदायके बौद्ध विराजमान थे। पाल राजा एक ओर तो अनेक स्थानोंमें शिवप्रतिष्ठा करते थे और उधर दूसरी ओर बौद्ध भावसे शिवकी शक्तिकी भी उपासना करते थे। इन दोनों विषयोंका चिन्ह इस सारनाथमें है, यह भी इस सम्बन्धमें देखने और ध्यान देने योग्य बात है।

ग्यारहवीं शताब्दीमें सारनाथकी अवस्था।

दशवीं शताब्दीके अन्तिम भागमें (वि० की ग्यारहवीं सदीके आरम्भमें) कन्नौजका राज्य छिन्न भिन्न हो नाम मात्रके लिए रह गया था। और इसपर भी सुबुक्तगीन, सुल्तान महमूद आदि मुसलमानोंने इस समयसे लेकर ग्यारहवीं शताब्दीके प्रथम भागतक उत्तर भारतपर जो अधिकाधिक अत्याचार पूर्ण आक्रमण किये उनसे कान्यकुब्जके राज्यकी दुर्दशाकी अवधि न रही। संवत् १०७५ वि० में महमूदके आक्रमणसे कन्नौजके राजा राजपाल भाग

(२४) "He (Taranath) adds that during the reign of the Pala dynasty there were many masters of Magic, Mantra Vajracaryas, who, being possessed of various siddhis, performed the most prodigious feats." Kern's Manual of Buddhism p. 135. Taranath 201 (quoted).

कर भी विश्राम न पा सके । सुतरां उस समय इस सारनाथ विहारकी जो अधोगति रही होगी वह कल्पनातीत है । कन्नौजपर अधिकार जमानेपर महमूदने रूहेलखंड (कतेहर) जीता और किसी किसीके मतानुसार बनारस और सारनाथके विहारादिको भी लूटा (२५) । श्रीयुत रमाप्रसाद चन्द्र महाशयने यह दिखलाया है कि उस समय वाराणसी गौड़ राज्यमें था और गौड़ सेनासे रक्षित था, इस लिये सम्भवतः यह नगर महमूदके आक्रमणसे बच गया (२६) । इसके दो प्रमाण और मिलते हैं । प्रथमतः यह कि परधर्मविद्वेषी महमूदका आक्रमण कुछ ऐसा वैसा तो होता न था, वह जिस तीर्थस्थानपर आक्रमण करता था उसे पूर्णतया ध्वंस करके छोड़ता था । उसके वाराणसीके सम्बन्धमें ऐसा करनेका कोई इतिहास नहीं मिलता । द्वितीयतः "ईशान-चित्रघंटादि-कीर्त्ति रत्न शतानि"

(२५) "This much, however, is certain, that in A.D. 1026 a restoration of the main movements of Sarnath took place, and we may perhaps connect this restoration with the capture of Benares by Mahmood of Ghazani which occured in A. D. 1017,"—Sarnath catalogue. Vogel's Introduction, p. 7.

(२६) गौड़ राजमाला ४१, ४२ पृष्ठ । १०२० सन् ईसवीके पहिले महीपाल राजाने वाराणसीकी विजय की थी, श्रीयुत राखालदास बन्द्योपाध्यायने भी इसको सिद्ध किया है । "The Palas of Bengal" by R. D. Benrjee in Memoirs of A.S.B. Vol. V, No. 3 p. 70.

निर्म्माण करानेमें महीपालको बहुत समय लगा होगा एवं निश्चय ही इनके बननेका समय सारनाथके संस्कार कार्य्यके समयसे अथवा १०१३ विक्रमीसे बहुत पूर्व्ववर्त्ती होता है। महमूदके आक्रमण समयमें अथवा उसकी विजयके पीछे "कीर्त्तिरत्न शतानि" का निर्म्माण कराना असम्भव कार्य्य है। नियालतगीनके पहिले (सन् १०९०) वाराणसी मुसलमानोंके अधिकारमें नहीं आया। इस बातको उनके ऐतिहासिक भी लिखते हैं। (२७)

पूर्व्वही लिखा जा चुका है कि अनेक कारणोंसे सारनाथविहार बहुत दिनोंसे जीर्णदशापन्न हो गया था। ग्यारहवीं शताब्दीके प्रथम भाग (वि० की ग्यारहवीं सदीके उत्तर भाग) में, पाल नृपति महीपालके अभ्युदयसे मृततुल्य बौद्धसमाज थोड़े समयके लिए फिर जी उठा। उनके समयमें बहुतसे बौद्धग्रन्थ लिखे गये, बहुतसी बौद्ध मूर्तियां प्रतिष्ठित की गयीं। तिब्बतमें भी इसी समय बौद्धधर्म्मका लुप्त गौरव फिर जी गया। महीपालने ही दीपङ्कर श्रीज्ञान वा अतीशको विक्रमशिलामें बुलाकर प्रधान आचार्य्य पदके लिये चुना था। सुतरां इसमें आश्चर्य ही क्या हो सकता है कि इसी पाल नृपतिके समय लुम्बिनी, नालन्दा इत्यादि स्थानोंके साथ साथ बौद्ध धर्म्मके आदिस्थान सारनाथके जीर्णोद्धारका कार्य्य हुआ होगा ? सं० १०८३ वि० के सारनाथमें

महीपालका सारनाथमें संस्कार कार्य्य ।

(27) Tankhu.s Subukatgin, Elliots History of India Vol. II p. 123.

मिले हुए महीपालके एक लेखसे भी यह मालूम हुआ है कि श्री वामराशि नामक गुरुदेवके पादपद्मकी आराधना कर गौड़ाधिप महीपालने जिनके द्वारा पहिले काशीधाममें ईशान और चित्रघण्टादि (दुर्गा) सैकड़ों कीतिरत्न निर्माण कराए थे, उन्हीं स्थिरपाल और वसन्तपाल द्वारा मृगदावमें भी संवत् १०८३ में "धर्म्मराजिका" वा अशोकस्तूप (साङ्ग धर्म्मचक्र) का जीर्णसंस्कार कराया था और अष्ट महास्थ.न वा समग्र विहारकी शिलानिर्म्मित गन्धकुटी (Main shrine) निर्म्माण करायी। (२८) इन्हीं कारणोंसे श्रीयुत अक्षयकुमार मैत्र महाशयने इस समयको (सार्वदैशिक) "संस्कार युग" कहा है। यह कहना अनावश्यक है कि सारनाथमें इस विषयकी एक महीपाललिपि भी प्राप्त हुई है।

चेदिराज कर्णदेवका सारनाथ विहार-पर अधिकार।

सारनाथके संस्कारके बादही वाराणसी पालराजाओंके हाथसे निकलकर चेदिराज्यमें मिल गया। (२९) कुछ समयतक वाराणसी और सारनाथ चेदिराज गाङ्गेयदेवके अधिकारमें थे। ऐसा प्रतीत होता है कि अनेक युद्धोंमें लगे रहनेके कारण गाङ्गेयदेव इस नवविजित वाराणसी राज्यको सुरक्षित न रख सके। इसीलिये सुन पड़ता है कि इन्हींके समयमें गज़नीके अधीश्वर मासूदके (Ma'sud) अधीन लाहोरके शासनकर्त्ता नियालतगीन

(२८) विशेष आलोचनाके निमित्त इस पुस्तकका षष्ठ अध्याय, परिशिष्ट एवं गौड़ लेखमाला पृष्ठ १०४-१०९ देखिये।

(२९) R. D. Banerji's The Palas of Bengal. (M. A. S. B.) p. 74.

द्वारा वाराणसीमें कुछ घण्टोंके लिये लूट हुई थी। (३०) इसमें कोई सन्देह नहीं मालूम होता कि मुसलमानोंका यह आक्रमण सारनाथतक नहीं पहुंचा। संवत् १०८७ वि० में गाङ्गेयदेवकी मृत्यु हो जानेपर उनके पुत्र महावीर कर्णदेव अपने पिताके सुविस्तृत राज्यके अधिकारी हुए। एक लेखसे भी मालूम हुआ है कि संवत् १०९९ में उनके राज्यकी सीमा वाराणसी पर्य्यन्त थी। (३१) सारनाथमें भी एक लिपि मिली है जो इनके अधिकारकी सूचना देती है। [D (e) 8]। इसमें कालचूरि संवत् ८१० अथवा सं० १११५ विक्रम अंकित है। लिपिसे यहभी मालूम होता है कि उस समयतक सारनाथका नाम "सद्धर्म्म चक्रप्रवर्त्तन" विहार था, यहांपर महायानियोंका प्राबल्य था और इसी समय महायानीय शास्त्र "अष्टसाहस्रिका" की प्रतिलिपिकी रचना भी हुई।

---

(३०) श्रीयुक्त रमाप्रसाद चन्द्र महाशय और प्राच्यविद्यामहार्णव दोनोंने निस्सन्देह रूपसे लिखा है कि नियालतगीनके आक्रमणके समय वाराणसी राज्यपाल राजाओंके अधिकारमें था। इस प्रकार लिखनेका कारण समझमें नहीं आता। मुसलमानी इतिहासमें स्पष्टतः लिखा है—"Unexpectedly he (Nialatgin) arrived at a city which is called Benares and which belonged to the territory of Gang. Never had a Muhamadan army reached this." Elliot, Vol: II. p. 123. इसे छोड़ सारनाथमें मिले हुये कर्णदेवके लेखसे भी यही मालूम होता है कि इसपर चेदिराज्यका अधिकार था। प्राच्यविद्या महार्णव महाशयने भी गाङ्गेयदेवकी सीमा वाराणसीतक बतलायी है। बङ्गेरजातीय इतिहास (राजन्यकाण्ड) १८३ पृ०

(३१) Epigraphia Indica Vol II p. 300

अपने पिताके सांवत्सरिक श्राद्धके उपलक्षमें (७९३ चेदि संवत्‌में) जो उन्होंने प्रयागमें ताम्रशासन दान किया, उससे यह मालूम हुआ है कि उन्होंने कर्णवती नामक नगरी एवं काशीधाममें कर्णमेरु नामका एक सुबृहत् मन्दिर निर्म्माण कराया था। (३२) चेदिपति कर्णदेवने प्रायः ६ वर्ष राज्य किया। सुतरां यह अनुमान किया जा सकता है कि ग्यारहवीं शताब्दीके मध्यभागसे कुछ अधिक समयतक सारनाथ पर उन्हींका अधिकार था।

गोविन्दचन्द्रकी पटरानी कुमर देवी द्वारा धर्म्मचक्रमें मूर्ति-संस्कार।

विक्रमकी बारहवीं सदीके आरम्भमें महोबाके चन्देल नृपति कीर्तिवर्म्माने कर्णदेवको पराजित करके उनकी विस्तृत कांति और राज्यको अनेक प्रकारसे हस्तगत कर लिया। (३३) सम्भवतः इस समय कुछ कालके लिए सारनाथ भी उनके करतल गत हुआ था। इसके कुछ ही समय पीछे वि० की १२ वीं सदीके आरम्भमें कान्यकुब्जके नवप्रतिष्ठित गहड़वाल वंशके नृपति चन्द्रदेवने वाराणसी, अयोध्या प्रभृति उत्तराखंडके प्रधान राज्योंकी विजय की। (३४) इस समयसे लेकर तेरहवीं सदीके आरम्भ

(३२) Ibid १८८ पृ०; Ibid p. २०५

(३३) V. A. Smith's Early History of India (2nd. Edn:) p. 362; काशी परिक्रमा २४७ पृ०; 'बांगलार इतिहास' २३१-२३२; बंगेर जातीय इतिहास (राजन्यकाण्ड) १८७ पृ०

(३४) Early History of India (2nd Edn:) p. 355—" × × Chandradeva, who established his anthority certainly over Benares and Ajodhya and perhaps over the Delhi territory."

तक वाराणसी तथा सारनाथका शासन गहड़वाल राजाओं-के हाथमें ही रहा। उनके द्वारा वाराणसी और सारनाथमें की गयी विविध प्रकारकी उन्नतिका पता लगता है। वाराणसी आदि स्थानोंसे निकली असंख्य लिपियों और मुद्राओंसे पता लगता है कि चन्द्रदेवके पौत्र, इस वंशके वीर चूड़ामणि गोविन्द चन्द्रने कान्यकुब्जके प्रनष्ट गौरवके पुन-रुद्धारके लिए कैसा प्रयत्न किया। (३५) उनका राज्यकाल सम्भवतः ११७१-१२११ विक्रम है। उन्होंने एक समय मगधके ऊपर आक्रमण कर लक्ष्मणसेनसे युद्ध किया। फल यह हुआ कि लक्ष्मणसेनने उन्हें पराजित कर कुछ दिनों-तक उनका पीछा प्रयाग पर्य्यन्त किया और विश्वेश्वर क्षेत्र तथा त्रिवेणी-सङ्गमपर यज्ञयूप तथा बहुतसे जयस्तम्भ स्थापित किये। (३६) लक्ष्मणसेनका अधिकार इस वारा-णसीपर अवश्य ही अल्पकालतक ही रहा। तेरहवीं सदीके अंतमें गोविंदचन्द्रकी अन्यतमा महिषी कुमर देवीने सारनाथमें धर्म्माशोक कालीन एक धर्म्मचक्रजिन वा बुद्धमूर्त्तिके संस्कारके उपलक्षमें अपूर्व्व गौड़रीतिसे निवद्ध एक दीर्घ प्रशस्ति प्रदान की। इस प्रशस्तिसे अनेक ऐतिहासिक समाचार मालूम होते हैं। संक्षेपमें यह कि राष्ट्रकूट वंशीय महनदुहिता शङ्करदेवीके साथ पीठपति देव-रक्षितका विवाह हुआ। शङ्करदेवीके गर्भसे कुमरदेवीका

---

(३५) इस वंशकी मुद्राका वर्णन श्रीयुक्त राखालदास बन्द्योपाध्यायकृत "प्राचीन मुद्रा" प्रथम भाग २१४—२१५ पृ०

(३६) राजन्यकान्त पृ० ३३९; R. D. Banerji's "The Palas of Bengal," pp: 106-107.

जन्म हुआ। कान्यकुब्जके राजा गोविन्द चन्द्रने उसका पाणिग्रहण किया। (३७) रामपाल चरितसे भी जाना गया है कि महन गौड़ाधिप रामपालके मामा थे। कैवर्त्त विद्रोहकालमें यही महन गौड़ाधिपके दाहिने हाथके सदृश विराजमानथे। इस लिपिमें महनसे देवरक्षितके हराये जानेका उल्लेख देख यह विचार उठता है कि कैवर्त्त विद्रोहकालमें अथवा उसके पूर्व्व पीठीपति रामपालके विरुद्ध खड़े हुए होंगे। (३८) गोविन्द चन्द्रके हिन्दू होनेपर भी कुमरदेवीकी बौद्धप्रीति सारनाथविहार निर्म्माण, बुद्धमूर्ति-संस्कार और "धर्म्मचक्रजिन शासन सन्निबद्ध"-ताम्रशासन दान आदि कार्य्योंसे प्रकाशित होती है। इस लेखमें यह भी है कि दुष्ट तुरुष्क सेनासे वाराणसीकी रक्षा करनेके निमित्त महादेवने गोविन्दचन्द्रको हरि रूपसे नियुक्त किया था। (३९) इससे यह अनुमान होता है कि नियालतगीनके पीछे भी तुरुष्कगण विश्रामसुखका अनुभव न करते हुए वारा-

---

(३७) वल्लभराज (पीठीके) महन (राष्ट्रकूट) चन्द्र (गहड़वालवंशीय)

देवरक्षित + शङ्करदेवी — मदनचन्द्र

कुमरदेवी + गोविन्दचन्द्र (१११४–११५४)

(३८) बंगालका इतिहास, १ म भाग २५८ पृष्ठ।

(३९) "वाराणसीं भुवनरक्षणदक्ष एको
दुष्टान्त [तु] रुष्क सुभटा द्वयितुं हरेण।
उक्तो हरिस्स पुनरत्र बभूव तस्माद्
गोविन्दचन्द्र इति [प्र] थिताभिधानैः ॥१९॥"
कुमरदेवीकी प्रशस्ति Epi. Ind: Vol IX 323 ff.

णसी प्रभृति स्थानोंपर धावा करनेसे विरत नहीं हुए थे। गौड़ राजमालामें बहराम शाह आदिके वाराणसीपर इन छोटे छोटे आक्रमणोंकी विशेष भावसे आलोचना हुई है। (४०) सुतरां गोविन्द चन्द्रने तेरहवीं सदीके आरम्भपर्य्यन्त वाराणसी और सारनाथकी तुरुष्क आक्रमणोंसे अवश्य ही रक्षा की थी। किन्तु उन्होंने क्या कभी स्वप्नमें भी विचारा था कि और आधी शताब्दीमें सारनाथ ही क्या सारा भारत किस अवस्थान्तरमें होगा?

मुसलमानोंद्वारा वाराणसीका ध्वंस होना।

इतिहासके सभी पढ़ने वालोंको गोविन्दचन्द्रके पौत्र जयचन्द्रका नाम ज्ञात है। उनके जामाता चौहान नृपति पृथ्वीराजका चिरस्मरणीय नाम भी हमें अपरिचित नहीं है। पृथ्वीराज मुहम्मद गोरीको कई बार पराजित कर स्वयं भी अदृष्टचक्रमें पड़ पराजित हुए थे। (४१) इसी पराजयसे हिन्दू राज्यका अन्त हुआ। एक एक कर उत्तरीय भारतके समस्त राज्योंने मुसलमानोंकी वश्यता स्वीकार कर ली। सं० १२५७ वि० में गोरीका सेनापति कुतुबुद्दीन जयचन्द्रको पराजित कर वाराणसीके मन्दिरादिका ध्वंस करनेमें प्रवृत्त हुआ।

---

(४०) गौड़राजमाला ६९ पृ०। आक्रमणकारीगणोंका हिन्दुस्तानमें धर्म्मयुद्धमें प्रवृत्त होनेका वर्णन मिलता है। ध्यान देने योग्य विषय है कि धर्म्म युद्ध करनेके लिये धर्म्मकेन्द्र वाराणसीकी ओर विधर्म्मगणोंका आगमन स्वाभाविक है : Elliot Vol II, page 251.

(४१) राजपूतोंकी वीरताको कोई मिथ्या नहीं कर सकता "Lane Poole's "Mediaeval India" p. 61

"ताजुल-म-आसिर" नामक मुसलमानोंके इतिहासमें लिखा है कि मुसलमानोंने १००० मंदिरोंको तोड़ उनके स्थानोंपर मसजिदें बनवायीं। इसके पीछे गोरी वाराणसी एवं आसपासके स्थानोंके शासनका प्रबन्ध करके गज़नीकी ओर लौट गया। (४२) 'कामिलु तवारीख' नामक मुसलमानोंके एक दूसरे इतिहासमें लिखा है कि वाराणसीका राजा भारतवर्षमें सबसे श्रेष्ठ राजा था। गोरीकी सेनाने राजाको पराजित कर और उसे मार कर वाराणसीका सर्व्वस्वान्त कर दिया। समस्त हिन्दुओंके रक्तसे महीतल प्लावित हुआ, अपरिमित धन, रत्नादि लूटा गया। गोरी स्वयं वाराणसीमें आकर १४००० ऊटोंपर धनराशि लदवा कर गज़नीकी ओर ले गया। (४३) यह निस्सन्देह कहा जा सकता है कि वाराणसीके हिन्दूमन्दिरोंके साथ साथ सारनाथकी बौद्धकीर्ति भी मुसलमानोंके कठोर आक्रमणसे रक्षित न रह सकी। (४४) तबसे सारनाथ विहार चिर-पतित हो गया। इसके आगेका समसामयिक इतिहास उसकी कथा नहीं बतला सकता। सम्भवतः मुसलमान यह नहीं

(४२) Elliot's History of India Vol: II, pp. 223.224.

(४३) Ibid, pp. 250-251

(४३) "It was, no doubt, this violent overthrow of Hindu rule in Hindusthan which brought about the final destruction and abandonment of the Great Convent of the Turning of the wheel of the Law". Sarnath Catalogue Vogel's Introduction, p. 8

जानते थे कि बौद्ध धर्म्म हिन्दू धर्म्मसे भिन्न है। इसी लिए उनके इतिहासमें "बौद्ध" नाम भी कहीं नहीं पाया जाता है।

धर्म्मचक्र विहारके अधःपतनका रहस्य जाननेके लिए बौद्ध समाजके ध्वंसकी कारण-परम्पराकी थोड़ीसी आलोचना करना आवश्यक है।

सारनाथ विहारका तिरोभाव।

हम पूर्व्वही कह चुके हैं कि बौद्ध तान्त्रिकताके आविर्भावके साथ साथ बौद्ध समाजके बलकी हीनावस्था भी देख पड़ने लगी। महाराजा हर्षवर्द्धनकी मृत्युके पीछे उत्तर भारतका राज्य कई खण्डोंमें विभक्त हो गया और बौद्ध समाजको भी जनसाधारणके सदृश अनेक प्रकारके दुःख सहने पड़े। हर्षके पीछे बौद्ध धर्म्मकी शक्तिका लोप करनेके निमित्त कुमारिल भट्ट और शंकराचार्य भी आविर्भूत हुए थे। वे केवल दार्शनिक विचारसे बौद्धोंको परास्त करके ही सन्तुष्ट न हुए, वरन् उन्होंने शैवमतको पुनरुज्जीवित करके अनेक स्थानोंमें शैव मठ मन्दिर आदि भी बनवाये। इसी समयसे शैव और शक्ति मत विशेष प्रबल हो उठे। हिन्दू नृपतियों द्वारा बौद्ध समाजको कुछ कुछ सहायता मिलनेपर भी, जिस प्रकार हिन्दू समाज श्रीवृद्धि लाभ कर रहा था, उसी प्रकार बौद्ध समाज भी क्रमशः क्षीणसे क्षीणतर अवस्थाको प्राप्त हो रहा था।

आठवीं शताब्दीमें अरबोंके आगमनके साथ साथ बौद्ध समाजके पतनके सम्बन्धमें कई बातें आविष्कृत हुई हैं। इन सबसे अधिक, बौद्धोंमें जो नैतिक अवनतिका विष प्रवेश कर गया था उसीने बौद्ध समाजकी देहको क्रमशः जर्ज्जरित कर डाला। इन्हीं सब कारणोंसे बौद्ध धर्म्मके प्रति हिन्दुओंका

विश्वास कम हो गया था। इस प्रकार शिथिल और ध्वंसकी ओर अग्रसर बौद्धसमाज एक आकस्मिक कारणसे अपनी अनिवार्य्य अन्तिम अवस्थाको प्राप्त हुआ। बारहवीं शताब्दीमें "गर्ग यवन कालान्तक काल" तुरुष्कगण वायु-कोणसे एक भीषण आंधीकी तरह आकर सारे देशमें छा गये, जिससे उत्तरीय राज्य सब नष्ट हो गये, मठ मन्दिर चूर्ण हो गये, नर नारियोंके रक्तकी गङ्गा बह चली और बौद्ध समाज भी एक ही फूत्कारमें सदाके लिए धरणी तलसे दूर कर दिया गया। हिन्दू राज्य चले जानेसे भी हिन्दू सभ्यता नहीं गयी। बीच बीचमें हिन्दू गौरव उठता रहा। वाराणसी कुछ समयके लिए विध्वस्त होकर डूब गया परन्तु फिर समय पाकर दृष्टिगोचर हुआ। किन्तु सारनाथका बौद्ध समाज काल-जलधिके अंतिम तलमें एक बार डूबकर फिर कभी न उठा।

चतुर्थ अध्याय ।
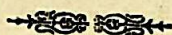
ईंटें निकालनेके लिए जगत्सिंहके स्तूपका खुदवाना ।

यह पहले ही लिखा जा चुका है कि सारनाथकी बौद्धकीर्त्ति किस प्रकारसे ध्वंस हुई और धीरे धीरे जनसमाज द्वारा पूर्ण रूपसे त्याग दी गयी। बौद्ध विहारके ध्वंसके समय क्रमशः गिरते गिरते मिट्टीने सम्पूर्ण स्थानको घेर लिया और कुछ समयमें बौद्ध विहार और मृगदावका विशेष दृश्य चिन्ह भी शेष न रहा। केवल धामेकस्तूप, जो अपेक्षया आधुनिक युगका है, कालगतिसे एक प्रकारकी प्रतिद्वन्द्विता करता हुआ सगर्व खड़ा रह गया। इस स्तूपको देख करके भी यह विचार उस समय किसीके मनमें भी न उठा कि इसके समीप कोई बड़ा प्राचीन चिन्ह भूगर्भमें छिपा रह सकता है। इस स्थानको प्रथम खुदवानेका काम सर्कारी पुरातत्व विभागके द्वारा शुरू भी नहीं हुआ था। नीचे हम खनन कार्य्यका एक धारावाहिक इतिहास देते हैं।

सारनाथ मंडलके अन्दर जो एक विराट् प्राचीन कीर्तिभण्डार सञ्चित था उसका पता लगते ही यथायोग्य-रूपसे अनुसन्धान कार्य्य आरम्भ हुआ। इसका पता भी एक

अद्भुत घटनाचक्र द्वारा लगा था । उसका वर्णन बड़ा कौतुकजनक है । सं० १८५१ वि० में काशिराज चेतसिंहके दीवान बाबू जगत्सिंह शहरमें अपने नामसे एक बाजार बनवा रहे थे । यह बाजार अबतक काशीमें "जगतगञ्ज मुहल्ला" के नामसे प्रसिद्ध है । यह जानकर कि सारनाथमें खोदनेसे ही बहुत ईंट और पत्थर मिल सकते हैं, दीवान साहबने कुछ लोगोंको इस कार्य्यमें लगा दिया । (१) उन्होंने धामेक-स्तूपसे ५२० फुट पश्चिमको ओर भूमि खोदते खोदते ईंटोंसे बना हुआ एक सुवृहत् स्तूप और उसमेंसे पत्थरकी एक पेटी (छोटा सन्दूकचा) निकाली । बाहरके संदूकके भीतर एक संगमर्म्मरके सन्दूकमें कुछ अस्थिखंड (हड्डीके टुकड़े) मोती, सुवर्ण पात्र और मूंगे इत्यादि भी थे । आधारस्थ अस्थिखंड, मुक्ता इत्यादि पदार्थ गङ्गाजीमें फेंक दिये गये । इनमेंसे बड़ा सन्दूक आजकल कलकत्ता म्यूज़ियममें विद्यमान है परन्तु छोटेका पता नहीं चलता । कौन कह सकता है कि इन अस्थिखंडोंके साथ बुद्ध भगवान् या उनके किसी शिष्यका सम्बन्ध था या नहीं । किन्तु उस विषयके अनुसन्धानकी कल्पना इस समय केवल दुराशा मात्र है । इसी लिए इस कार्य्यमें हस्तक्षेप करनेका किसीने साहस नहीं किया । पत्थरके सन्दूकको छोड़ कर इस स्थानसे एक बुद्धमूर्ति भी मिली है । इसीके पादपीठ (आसन या चौकी) पर पालनृपति महीपालकी लिपि खुदी हुई है । (२) यह अब भी सारनाथ म्युजियमकी शोभा

(१) Asiatic Researches Vol V p. 131 tet seq.

(२) इस लिपिकी विस्तृत आलोचनाके निमित्त षष्ठ अध्याय देखिये ।

बढ़ा रही है। इसका नम्बर म्युज़ियमकी तालिकामें B (c) है। बाबू जगत्सिंह द्वारा खुदवाये हुए स्तूपके स्थानको इस समय "जगत्सिंह स्तूप" के नामसे पुकारते हैं। एक वृहत् गोल गड्ढेमें यह स्तूप-स्थान देखा जा सकता है। जगत्-सिंहके इस स्तूपाविष्कारका विवरण हमें वाराणसीके उस समयके कमिश्नर मिस्टर जोनाथन डन्कनसे प्राप्त हुआ है। उन्होंने ही इस भू-खननकी सूचना उस समयकी नवप्रतिष्ठित वंगीय एशियाटिक सोसाइटीको लिख भेजी और साथ साथ पूर्वोक्त दोनों पत्थरके सन्दूक भी भेजे थे। सन्दूकोंमेंके अस्थिखंडके सम्बन्धमें जो बात जन-साधारणसे मालूम हुई उसका भी उसीके साथ उन्होंने उल्लेख कर दिया। उनमेंसे एक दलका यह मत था कि कदाचित् किसी राजाकी मृत्युके पीछे राजमहिषी सती हो गयी हो और उसकी अस्थियां राजपरिवार द्वारा इस रूपसे सयत्न रक्खी गयी हों और दूसरे दलका यह मत था कि किसी मृत व्यक्तिके देह-संस्कारके पीछे उसकी अस्थियां शुभ मुहूर्त्तमें गङ्गाजीमें छोड़नेके लिए कुछ समयके लिए ऊपर कहे हुए स्थानमें बन्द करके रक्खी गयी थीं। (३) जो हो डन्कनने इन दोनों दलोंके मतोंकी असारता सूचित करते हुए इन अस्थियोंको बुद्ध भगवान्के किसी शिष्यकी प्रमाणित करनेकी चेष्टा की है। इसके प्रमाणमें उन्होंने इसके साथ मिली हुई बुद्ध मूर्त्तिका भी उल्लेख किया है। (४) साहबके

(३) इसी दलके मतानुसार कदाचित ये अस्थियां गङ्गाजीमें डाली गयी हों।

(४) Asiatic Researches Vol 1X p. 293.

इस मतका चाहे जो मूल्य हो, उन्होंने इस स्तूपके साथ बौद्धोंके सम्बन्धका जो स्थिर अनुमान किया था उससे परवर्ती अनुसन्धानको यथेष्ट रूपसे सहायता अवश्य मिली।

मैकेञ्जी और कनिंघमके भू-खननका फल।

जगत्‌सिंहके द्वारा स्तूप-स्थानके आविष्कृत होनेपर बहुतसे अनुसन्धानकारी सारनाथमें खनन कार्य्यकी उपयोगिताका विशेषरूपसे अनुमान करने लगे। सं० १८७२ वि० में श्री कर्नल सी० मैकेञ्जी सबसे पहले सारनाथके भूगर्भ-खनन कार्य्यमें अग्रसर हुए। (५) मिस् एमा रावर्टस् नामकी एक अंग्रेज़ महिलाने काशीमें रहनेवाले किसी अंगरेज़से कौतूहल वश सारनाथमें खुदाई करायी और जो दो एक बुद्ध मूर्तियां मिलीं उनका उल्लेख भी किया। (६) इनसे पीछे खुदाई करानेवाले सुविख्यात पुरातत्व विशारद सरकारी पुरातत्व विभागके प्रथम डाइरेक्टर जेनरल, सर अलेक्ज़ेण्डर कनिंघम थे। उन्होंने भारतके सभी प्राचीन स्थानोंमें कुछ न कुछ अनुसन्धान किया और पीछे आनेवाले पुरातत्वज्ञोंके आविष्कार-पथको सुगम कर दिया। सारनाथके खननका फल देख उन्होंने लिखा है कि "सारनाथमें खनन-कार्य्य करनेकी कोई आवश्यकता नहीं है।" (७) सं० १८९२-९३ विक्रमीमें उन्होंने तीन प्रधान स्तूपोंकी परीक्षा आरम्भ की। धामेक-स्तूप खनन कराते समय उन्होंने उसमेंसे एक शिलाका खंड

(५) Archaeological Survey Reports 1903-4, p. 212.
(६) R. Elliot. "Views in India" etc Vol. pp. 7 f.
(७) Archaeological Survey Report Vol 1 p. 129.

पाया था जिसपर "ये धर्म्महेतु प्रभवा" इत्यादि बौद्ध मंत्र खुदा था। यह शिला इस समय भी कलकत्तेके इंडियन म्युज़ियममें रक्षित है। धामेकस्तूपके सम्बन्धमें श्रीकनिंघम-की रिपोर्टके ज्ञातव्य विषय श्री शेरिंगकृत काशीधाम विषयक ग्रन्थमें लिपिबद्ध हैं। इसके पीछे उन्होंने जगत्सिंह स्तूपकी परीक्षा करके प्राचीन बौद्ध चिन्हके प्रकृत स्थानको निर्धारित किया। "चौखण्डी" स्तूप खोदनेसे उन्होंने विशेष फल न प्राप्त किया। सारनाथके निकटवर्त्ती बाराहीपुर ग्राम-के निकट उन्होंने एक टूटे मन्दिरके इधर उधर शिला मूर्त्तियोंके ५०।६० खण्ड पाये और इन्हें देखकर अनुमान किया कि मूर्त्तियां अवश्य निकटके किसी मन्दिरमें रही होंगी और विधर्म्मीगणके अत्याचारोंसे छिपाकर यहां रक्खी गयी होंगी। डा० वोगल इस अनुमानको युक्तियुक्त मानकर इस मूर्त्ति-संग्रहमें दो एक मूर्त्तियोंपर गुप्तलिपि देख अपना यह मत प्रकाश करते हैं कि ये हूणाक्रमणके समयमें छिपायी गयी थीं। (८) हम यही समझते हैं कि सारनाथकी सभी मूर्त्तियां इसी प्रकार स्थानान्तरित हुईं हैं। अगले अध्यायमें इसका वर्णन किया जायगा। श्रीकनिंघम द्वारा आविष्कृत मूर्तियां पहले बंगीय एशियाटिक सोसाइटीमें रहीं और अब कलकत्ता इंडियन म्युज़ियममें हैं। बुद्ध भगवान्के जीवनकी घटना-वली, भूमिस्पर्श मुद्रा और पद्मासनमें बैठी बुद्धमूर्त्तियां, अव-लोकितेश्वर और तारामूर्त्ति इत्यादि इन शिलाओंपर अंकित हैं। शेष मूर्त्तियां वरणा नदीपर पुल बनानेके समय पानीकी गति

(८) Sarnath Catalogue page 12.

रोकनेके लिये नदीमें डाल दी गयीं । इसके सिवाय वरणाके पुलकी दीवार बनानेके लिए एकवार और बहुतसे पत्थर सारनाथसे लाये गये । इसका विशेष रूपसे वर्णन श्रीशेरिङ्गके " The Sacred city of the Hindus " नामक ग्रन्थमें लिखा है ।

स्थापत्य शिल्पी किटोके खननकी कहानी ।

जेनरल कनिंघमके अनुसन्धानके बारह वर्ष पीछे इंजिनियर और पुरातत्त्वज्ञ मेजर किटोने जगतसिंह और धामेकके चारों ओर बहुतसे स्तूपों और मन्दिरों आदिकी भीतें और दो विहार स्थानोंका भी पता लगाया । किन्तु दुर्भाग्यका विषय है कि उनके अनुसन्धान-का वृत्तान्त प्रकाशित होनेसे पूर्व्व ही वह असमयही मृत्युके मुखमें चले गये । पत्रका एक ज्ञातव्य विषय इस स्थानपर उल्लेखयोग्य है । उन्होंने लिखा है कि सारनाथमें प्रत्येक स्थलपर खनन और अनुसन्धानसे मेरा यह दृढ़ विश्वास है कि मृगदाव विहार निश्चय ही अग्निसे जला दिया गया था । जिस समय मेजर किटो सारनाथके अनुसन्धानमें तत्पर थे उसी समय वह वाराणसीके क्वीन्स कालेजकी सुरम्य इमारतें बनवानेके लिये इंजिनियर रूपसे भी थे । उन्होंने क्वीन्स कालेजके बनवानेमें भी निज संगृहीत सारनाथके पत्थरोंका यथेष्ट व्यवहार किया था । कुछ ही दिन हुए मैंने इस विषयपर एक ज्वलंत प्रमाणका आविष्कार किया मुझे क्वीन्स कालेजके पूर्व्वदक्षिणकोनेकी भीतमें लगे हुए । एक प्राचीन प्रकारके टुकड़ेपर दो अति प्राचीन गुप्ताक्षर देख पड़े । अध्यापक डाक्तर वेनिसने भी इन अक्षरोंको देख मेरे

इस प्रमाणका समर्थन किया है। मेजर किटो द्वारा आविष्कृत अन्यान्य मूर्तियां अब भी सारनाथ म्युज़ियममें रक्षित हैं।

टामस और हालका तथ्यानुसन्धानमें प्रवृत्त होना

मेजर किटोके पीछे मि० टामस एवं क्वीन्स कालेजके प्रोफ़ेसर फिटजेरल्ड हाल एवं इनसे पीछे मि० हार्न और रिवेट कार्नेक (९) प्रभृति सज्जन खनन कार्यमें उत्साहित होकर लगे। किन्तु उनके अनुसन्धानसे कोई भी उल्लेखयोग्य वस्तु न निकली। उनके द्वारा आविष्कृत मूर्तियां बहुत दिनोंतक क्वीन्स कालेजके चारों ओर पड़ी थीं परन्तु इस समय वे सारनाथ म्युज़ियममें यत्नसे संग्रह की गयी हैं।

श्री० अर्टलद्वारा सारनाथमें खनन कार्य्यका आरंभ और नवयुगकारी आविष्कार

इसके बाद बहुत कालतक सारनाथकी ओरसे लोगोंका ध्यान प्रायः हट गया था। पूव लिखित टूटी फूटी मूर्त्ति आदिकोंमें जो स्थानान्तर करने योग्य थीं वे लखनऊ या कलकत्तेके म्युजियमोंमें भेज दी गयी थीं शेष सारनाथ-के मैदानमें पड़ी जीर्ण दशाको प्राप्त हो रही थीं। संवत् १९६१ पर्य्यन्त अर्थात् प्रायः पचास वर्षतक सारनाथकी यही दशा थी। इस समय एक अभूतपूर्व्व घटना हुई जिससे सारनाथमें खनन कार्य्यका पुनः आरम्भ हुआ। गाज़ीपुर वाली सड़कके साथ इस स्थान-को मिलानेके लिए सर्कारी सड़क बनानेके समय सहसा एक

---

(९) Archaeological survey Report, p. 125.

बुद्ध मूर्ति इस स्थानसे निकल पड़ी । (१०) इस आविष्कार-से पुरातत्वज्ञोंके मनमें एक नयी आशाका सञ्चार हुआ कि सारनाथकी प्राचीनकीर्त्तिके चिन्होंका अबतक निःशेष नहीं हुआ है । उत्साही पुरातत्त्वज्ञ मि० अर्टलने गवर्न-मेन्टकी अनुमति लेकर सरकारी पुरातत्व विभागकी सहा-यतासे संवत् १९६१-६२ वि० की शीतऋतुमें खनन कार्य्य आरम्भ कर दिया । वाराणसीके भूत पूर्व इंजिनियर स्वर्गीय राय बहादुर विपिन विहारी चक्रवर्ती महाशयने भी उन्हें इस कार्य्यमें सहायता दी । पुरातत्त्व विभागने गवर्नमेन्ट को यह प्रस्ताव भेजा कि यहीं एक म्यूजियम बने । अब जो कुछ इस खनन कार्य्यसे आविष्कृत हो वह उसीमें रखा जाय । गवर्नमेन्टने पहिले खनन कार्य्यके लिए ५००) पांच सौ रूपया मंजूर किया था, किन्तु खनन कार्य्यके आशातीत फलदायक प्रतीत होनेपर एक सहस्र १०००) मुद्रा फिर दीं । सारनाथके आश्चर्य्यजनक आविष्कारके लिए प्रधानतः वही संसारकी कृतज्ञताके पात्र हैं । उन्होंने ही सबसे पहिले व्यवस्थित और वैज्ञानिक प्रणालीसे भूखननकार्य्यका परिचालन किया । इसका फल यह हुआ कि एक ही ऋतुमें ४७६ खंड भास्कर्य्य और स्थापत्य निदर्शन और ४१ खुदी हुई लिपियां मिलीं । इसीके साथ बुद्ध भगवानका प्रथम धर्म्म-स्थान भी आविष्कृत हुआ ।

अर्टलके प्रधान आविष्कारोंमेंसे कई ये हैं—

(१) प्रधान मन्दिर

(१०) Sarnath Catalogue page 14.

(२) कुशान नृपति कनिष्कके समयकी एक बोधिसत्त्वकी मूर्ति, और पत्थरका छत्र, खोदित लिपि युक्त सिंहस्तम्भ ।

(३) महाराज अशोकका शिला—लेख युक्त स्तम्भ, स्तम्भ-शीर्ष और स्तम्भके भग्नांश ।

(४) एक बड़े संघारामकी भित्ति और राजा अश्वघोषकी एक शिला लिपि ।

(५) वहुत सी बौद्ध और हिन्दू देव देवियोंकी मूर्तियां ।(११)

अर्टलकृत खनन कार्य प्रायः २०० वर्ग फुटमें हुआ था ।

अर्टलकृत खननका विशेष वर्णन ।

यह स्थान जगतसिंह स्तूपके उत्तरमें है । श्रीकनिंघमने जिस स्थानको अपने मान-चित्रमें क्टिोवर्णित स्तूप वतलाया है उसी स्थानपर उपरोक्त मन्दिरकी भीत अविष्कृत हुई है । इसके सिवाय पूर्व्ववर्णित चौखंडी नामक स्तूपका ध्वंसावशेष भी खोदा गया है । जगत्सिंह-स्तूपसे दो सौ २०० फुट उत्तरमें उपरोक्त मन्दिरकी भीत मिली है । यह मंदिर भी कनिंघम द्वारा अविष्कृत मन्दिरके आकारका है । यह ६५ फुट लम्बा और उतनाही चौड़ा है । इस मन्दिरका द्वार पूर्व्वकी ओर है । तीन सीढ़ियोंपर चढ़कर हम मन्दिरके द्वारपर उपस्थित होते हैं । इस स्थानपर कई एक चतुष्कोण पत्थर हैं । इनमेंसे किसी भागपर तो बुद्धमूर्ति, किसीपर धर्म्मचक्र जिसके दोनों ओर मृग और उपासक मंडली वनी हुई हैं, किसी अंशमें चैत्य

(11) Budhistic ruin of Sarnath

इत्यादि नाना प्रकारके चित्र खुदे हैं। प्रधान द्वारसे हम प्रांगणमें प्रवेश करते हैं। यह प्रांगण ३६ फुट लम्बा और २३ फुट चौड़ा है। प्रांगणके दोनों ओर एक एक गृह है। प्रांगण में पश्चिमकी ओर एक ऊँचास्थान है। यहां पत्थरके चतुष्कोण दो खम्भे हैं। ये दोनों प्रायः ७ फुट ऊंचे है, इस उच्च स्थानके पश्चिम ओर मन्दिरके भीतरी भागकी भीतं हैं। भीतों के मध्य भागमें पत्थरके दो खम्भोंके बीचमें मन्दिरमें पधरायी हुई मूर्तिका आसन है। इनका आकार मेहराबका सा है। इसके चारों ओर प्रदक्षिणाका स्थान है। यह बहुत संकीर्ण है, कहीं कहीं तो केवल डेढ़ ही फुट है। इन दोनों स्तम्भों के पश्चिम ओर एक ४ फुट चौड़ा गृह है। इसके पश्चिममें इससे भी छोटा एक दूसरा गृह है। इस गृहमें मन्दिरके प्रधान द्वारसे प्रवेश नहीं किया जा सकता। मन्दिरके तीनों ओर तीन द्वार हैं। आंगनके दोनों ओरके दोनों घरोंमें उत्तर और दक्षिणके द्वारोंसे प्रवेश किया जाता है। पश्चिमस्थ द्वार द्वारा पूर्वलिखित छोटे घरमें प्रवेश होता है। उत्तरस्थ गृह ७ फुट, पश्चिमस्थ १०-६, एवं दक्षिणस्थ गृह ८-६ फु० लम्बे हैं। मन्दिरके पूरबकी ओर, प्रायः पचास फुट स्थान साफ किया गया है। इस स्थलपर छोटे छोटे कङ्कड़ोंसे बना हुआ एक आंगन आज भी वर्त्तमान है। मन्दिरके पूर्व ओरकी दीवार और प्राचीरका कुछ अंश पत्थरका बना हुआ है। इस अंश और पूर्ववर्णित चारों स्तम्भोंको छोड़कर मन्दिरका शेष भाग बड़ी बड़ी ईंटोंका बना है। सम्पूर्ण पत्थरोंके उपयोग और इन चित्रित पत्थरोंको देख कर यह अनुमान होता है कि यथार्थमें ये पत्थर इस मन्दिरमें लगाने के लिए नहीं खोदे गये थे।

किसी पत्थरमें तो बुद्धमूर्ति, किसीमें एक श्रेणी हंसों की, या किसीमें कमलदल चित्रित हैं। इन्हें छोड़ कहीं कहीं-पर इस मन्दिरके बनानेके समय पत्थरसे बने हुए चैत्योंके भग्नांश भी लगाये गये हैं। मन्दिरके पूर्व ओर भूमिस्पर्श मुद्रासे बैठी हुई एक सिरकटी बुद्ध मूर्ति है। यह प्रायः ४ फुट ऊँची है और इसके पीछे भी तीन सीढ़ियोंपर ६ चैत्य खुदे हैं। इसके नीचे एक चित्र खुदा है। एक घरकी खिड़कीमें एक सिंहका मुंह देख पड़ता है और घरके बाहर खिड़कीके एक ओर एक स्त्री और एक बालक हाथ जोड़ और घुटने टेक कर बैठे हैं। दूसरी तरफ़ एक स्त्री नाच रही है। इस दृश्यके ऊपर कुछ अक्षर खुदे हुए हैं जिनसे ज्ञात होता है कि यह मूर्ति बन्धुगुप्त नामक कारीगरकी दान की हुई थी।

इसको छोड़कर मन्दिरके पूर्वकी ओर किसी उल्लेख्यवस्तु का आविष्कार नहीं हुआ है। आंगनके दाहिनी तरफ वाले घरमें अब भी एक सिरकटी बुद्धमूर्ति है।

इस मन्दिरका दक्षिणी अंश अन्य अंशोंसे ऊंचा है। दक्षिण द्वारके दोनोंओरकी भीत आज भी १२ फ़ुट ऊंची है। इस गृहकी पश्चिमी दीवारके नीचे एक अति प्राचीन स्तूप बना है। इस स्तूपका आकार चतुष्कोण है। यह ईटोंसे बना है। इसके चारों ओर साञ्ची वा भरहुतके स्तूपोंके सदृश जंगले हैं। यह समचतुष्कोण है। इसकी एक ओर की लम्बाई ८-६ और ऊंचाई ४-६ है। यह एक ही पत्थरसे काट कर बनाया गया है। यह इस समय टूट गया है। इस पर दो तीन अक्षर भी खुदे हैं परन्तु उनको पढ़ना दुष्कर है। इसके

स्तूपका ऊपरी अंश गोलाकार है। खोदते समय देखा गया कि इसके निर्म्माण समयमें जंगले और स्तूप अति साव-धानीसे ईटोंसे ढंको गयो थे। दीवार बनाते समय लोग इसे तोड़ सकते थे किन्तु उन्होंने भली भांति इसकी रक्षा की। इसका कारण सम्भवतः यह है कि इस स्तूपमें उस समय लोगोंकी प्रगाढ़ भक्ति थी। इसीसे चाहे, देवताके भयसे, चाहे जन समाजके भयसे, उन लोगोंने इसकी रक्षा की। मन्दिर उत्तर और दक्षिण ओर प्रायः क्रमसे एक दूसरेके ऊपर बने कई ईटोंके स्तूप सुरक्षित छोड़ दिये गये हैं। इस प्रधान मन्दिरकी दक्षिण ओर दो क्षुद्र मन्दिर हैं। इन मन्दिरोंके भी दक्षिण और पश्चिमकी ओर अनेकानेक एक दूसरेके ऊपर ईटोंसे बने स्तूप हैं। पश्चिमीय सीमा पर्य्यन्त सारा स्थल स्तूपोंसे परिपूर्ण है। पूर्व्ववर्णित ऊपर्य्युपरि निर्म्मित स्तूपके दक्षिण ओर महाराज कनिष्कके समयकी एक लिपियुक्त बोधिसत्त्व मूर्ति, प्रस्तर छत्र और स्तम्भ मिले हैं। छत्र टूट कर दश खंड हो गया है। मूर्तिके तीन खंड और छत्रके स्तम्भके दो खंड हो गये थे, जो जोड़ कर रखो गयो हैं। बोधिसत्त्व मूर्तिके पदतल-पर दो पंक्ति शिला लिपि, पीछेकी ओर ४ पंक्ति और छत्र स्तम्भ पर १० पंक्ति शिला लिपि वर्तमान हैं। डाक्टर वोगल यह अनुमान करते हैं कि पीछे खुदी लिपिसे यह प्रमाणित होता है कि वर्तमानकालके सदृश उस समय मूर्त्तिको मन्दिरकी भीतसे नहीं लगा रखते थे। (१२)

(12) Annual Progressive report of the Superintendent of the United Province and Punjab, 1905 p. 57.

प्रधान मन्दिर और जगतसिंह स्तूपके मध्यका स्थल भी खोदा गया है। इसमें अनेक पत्थर तथा इटोंके बने असमान आकारके स्तूप मिले हैं। जगत्सिंह स्तूपके चारों ओर खोदनेसे एक प्रदक्षिणापथ आविष्कृत हुआ है। मन्दिरके पश्चिम द्वारके सम्मुख दश हाथ पश्चिमकी ओर महाराजा अशोकका शिला-लिपियुक्त एक पत्थरका स्तम्भ निकला है। स्तम्भपर महा-राजा अशोककी शिला लिपिको छोड़ और दो लिपियां हैं। एकमें राजा अश्वघोषके चालीसवें वर्षकी हेमन्त ऋतुके प्रथम पक्षके दशवें दिवसका उल्लेख है। दूसरी दान विषयक लिपि है। ये दोनों ही महाराजा अशोककी लिपिकी अपेक्षा नये अक्षरोंमें लिखी हैं। इस समय यह अपने प्राचीन स्थानपर सत्रह फुट ऊंचा खड़ा है। अशोक लिपिकी प्रथम तीन पंक्ति-यां टूट गयी हैं किन्तु यह भग्नांश म्यूज़ियममें रक्खा है। यह स्तम्भ चीनी यात्री द्वारा ७० फुट ऊंचा बतलाया गया है, किन्तु अब जो इसके अंश मिले हैं उन्हें और उसके शिरोभाग (Capital) को मिलाकर ५० फुटसे अधिक नहीं हैं। अन्य अशोक स्तम्भोंकी भांति इसके शिखरपर भी चार सिंह बने हुए हैं। इनके शिरोंके मध्यमें पत्थरके एक क्षुद्र स्तम्भपर धर्म्मचक्र था जिसका व्यास २-९ था इसमें प्रायः ३२ आरे थे। इस स्तम्भ-का निम्नांश अमार्ज्जित परन्तु ऊपरी अंश सुन्दररूपसे मार्ज्जित एवं दर्पणके सदृश उज्ज्वल हैं। इस स्तम्भके चारों ओर दश फुट गहिरा खोदनेसे अशोक कालीन एक प्राङ्गण निकला था। इसके ऊपर लगभग ५ फुटकी ऊंचाईपर मथुराके पत्थरका एक प्रस्तराच्छादित प्राङ्गण और उसके तीन फुट ऊपर एक दूसरा

प्राङ्गण एवं सर्व्वोपरि पत्थरके छोटे टुकड़ोंका बना वर्त्तमान प्राङ्गण आविष्कृत हुआ है। (१३)

मि० अर्टल (Mr. Oertal) के आगरा बदल जानेके कारण कुछ दिन पर्य्यन्त खननकार्य्य स्थगित रहा। सन् १९०७ ईस्वीमें भारतीय पुरातत्वमें निष्णात और उद्यमशील सरकारी पुरातत्व विभागके सर्व्वोच्च कर्मचारी सर डाक्टर जे० एच० मार्शल, डाक्टर स्टेन कोनों, निकोलस, पंडित दयाराम और स्वर्गीय विपिन विहारी चक्रवर्त्तीकी सहायतासे फिर कार्य्य आरम्भ किया गया। इस वर्ष खननका कार्य्य पहिलेकी अपेक्षा अधिकतर स्थानोंमें होता रहा। इससे सारनाथके खंडहरोंके पूर्वापर स्थिति निर्देश और भौगोलिक आकारज्ञानका पहिला सूत्रपात हुआ (अर्थात् एक ऐसा मानचित्र बन सका जिसमें सारनाथ क्षेत्र दिखलाया जा सके)। इस वर्षके भूखननका स्थान प्रधान मन्दिरकी उत्तर ओर था, क्योंकि दक्षिण भाग तो पूर्व्वसे ही खोदा जा चुका था। दक्षिणांशकी अपेक्षा उत्तरांशकी मूर्त्तियोंकी संख्या कुछ कम थी परन्तु वे अधिक मूल्यवान थीं। इस साल २४४ मूर्तियां और २५ शिला लिपियां मिलीं थीं। इनका यथा स्थान विशेष रूपसे वर्णन किया जायगा। जगत्सिंह स्तूपके दक्षिण ओर मिली हुई B (6) 73 नम्बरकी महाराज कुमार गुप्त की (द्वितीय) दान बुद्धमूर्ति, प्रधान मन्दिरके उत्तर पूर्व्व भागमें मिली हुई धनदेवकी दान दी हुई न० B (6) 79 गान्धार शिल्पकलाके अनुसार बनी बुद्धमूर्त्ति तथा दूसरी शताब्दीकी एक आर्य्य सत्य निबद्ध लिपि उल्लेख योग्य हैं। श्री अर्टलके

मार्शलका प्रथम खननकार्य्य ।

पीछे जो कुछ आविष्कृत हुआ है वह सभी श्री मार्शलके अनुसन्धानका फल है।

श्री मार्शलका द्वितीय खनन कार्य्य।

प्रथमवारके खनन-कार्य्यके फलसे उत्साहित हो फिर सन् १६०८ ईसवी (संवत् १६६५) में डाक्टर कोनोको साथ लेकर श्रीमार्शल इस कार्य्यमें लगे। इस वर्ष भी उत्तरीय अंशमें ही कार्य्य आरम्भ हुआ। धामेक स्तूपके उत्तरमें कितनेही स्तूपों आदिका आविष्कार करके मार्शलने इन्हें गुप्त कालीन (पंचमसे अष्टम शताब्दी तकका) वतलाया। जगतसिंह स्तूपके चारों ओर खोदवाकर उन्होंने स्तूपके पुनः सात बार संस्कार होनेके चिन्ह पाये। इस वारके खनन-कार्य्यमें वहुतसी हिन्दू बौद्धमूर्त्तियाँ और २३ शिला लिपियां भी आविष्कृत हुईं। इन्हें छोड़ कच्ची एवं पक्की मिट्टीकी मुहरें (Seal), मिट्टीकी वनी माला, द्वारोंके टुकड़े इत्यादि भी प्रचुर परिमाणमें मिले। सुदीर्घ १२ फुट ऊंची महादेवकी दश भुजावाली मूर्ति, १ म शताब्दी विक्रमीयसे कुछ पहिलेका मिट्टीका सिर, (१४) "क्षान्तिवादि जातक" चित्रित पत्थरका खंड, विश्वपालकी लिपि और कुमरदेवीकी लिपि आदि विशेष रूपसे उल्लेख योग्य हैं। इनका वर्णन समुचित रूपसे अगले अध्यायमें किया जायगा।

पृष्ठ ८० का नोट—(१३) श्रीयुत राखालदास वन्द्योपाध्याय लिखित "बौद्ध वाराणसी" प्रबन्ध सा० प० पत्रिका १३१३ साल, १९३ पृष्ठ

(१४) Annual Report 1907-08, figure 8.

श्री मार्शल साहबके खनन-कार्य्यके पीछे छः वर्षतक सारनाथमें खुदाईका काम बन्द रहा । सारनाथके खनन-कार्यनेही सबको चमत्कृतकर दिया था । इसलिये सारनाथके सदृश विख्यात ऐतिहासिक स्थानके खनन-कार्य्यका पुरातत्व-विभाग द्वारा इतने समयतक स्थगित रक्खा जाना न्यायसङ्गत नहीं कहा जा सकता । यदि साधारण लोग यह न जानें कि खुदाई कहां करानी चाहिये तो कोई आश्चर्य्यकी बात नहीं है । सर रत्न ताताने जो पाटलिपुत्रके खनन-कार्य्यमें बहुतसा द्रव्य लगा दिया इसके लिये हम उनको दोषी नहीं ठहरा सकते, पर यह सोचनेकी बात है कि पहिली खुदाइयोंका फल देखकर भी प्रत्नतत्व-विभागके अधिकारियोंने उनको आशानुरूप फलका लोभ कैसे दिखलाया । खैर, सारनाथकी खुदाईको जारी रखनेकी बात उनको उन दिनों भूल गयी थी । संवत् १९७२ में पुरातत्व-विभागके श्री हारग्रीवने जो थोड़े समयके लिए खनन-कार्य्य चलाया था उससे तीन अति मूल्यवान् मूर्तियां प्राप्त हुईं । इन तीनों मूर्तियोंके पाद-पीठोंपर द्वितीय कुमारगुप्तके राज्यकालतकके विषयोंका वर्णन करती हुई दानमूलक लिपियां खुदी हुई हैं ।

श्रीहारग्रीवका अनुसन्धान ।

पञ्चम अध्याय।
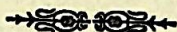
सारनाथसे प्राप्त शिल्प-चिन्होंका महत्त्व

सुप्रसिद्ध ऐतिहासिक विन्सेण्ट स्मिथने सारनाथसे निकली वस्तुओंको देखकर अन्तमें अपने विख्यात ग्रन्थमें इस सिद्धान्तको स्थिर किया है कि केवल सारनाथके शिल्पोंहीसे अशोकसे लेकर मुसलमानोंके अधिकार तकके भारतीय शिल्पके इतिहासका स्पष्ट वर्णन हो सकता है। (१) प्राचीन भारतमें जितने प्रकारकी शिल्पकलाओंका प्रचार हुआ था उन सबका नमूना यहां मिल सकता है। "भारतीय चित्रकला-पद्धति" के नव-सेवकगण यदि अपनी उग्र कल्पनाका परित्यागकर कुछ दिनोंके लिए इस स्थानकी शिल्प-रीतिसे शिक्षा लें, तो प्राचीन शिल्पादर्शके सम्बधमें भ्रान्त धारणाओंके लिए उन्हें हास्यास्पद बननेकी सम्भावना न रह जाय। आजकल यह अवश्य कहा जाता है कि कल्पनाक्षेत्रसे भारतीय चित्रकलाका आदर्श प्राप्त नहीं हो सकता, फिर भी आत्मनिर्भरशील नये चित्रकार इस बातको बिलकुल व्यर्थ समझेंगे।

(१) "*** the history of Indian sculpture from Asoka to the Muhammadan conquest might be illustrated with fair completeness from the finds at Sarnath alone." V. A, Smith "A history of fine Art in India and Ceylon" p. 148.

सारनाथकी ऐतिहासिक सामग्री शिल्पके अतिरिक्त मूर्तितत्व (Iconography) के लिहाज़से भी अधिक मूल्यवान् हैं। किस युगमें किस मूर्तिका आदर था, कौन सम्प्रदाय किस मूर्तिकी आराधना करते थे, किस सम्प्रदायमें परिवर्त्तन किया गया था, इत्यादि नाना ज्ञातव्य बातें हम सारनाथकी मूर्ति प्रभृति भास्कर्य्य निदर्शनसे ही जान सकते हैं। बौद्ध, हिन्दू, जैन मूर्तियोंकी अपूर्व्व सङ्गति अनेक तथ्योंका उद्‌घाटन कर देती है। मूर्तियों और शिल्पोंद्वारा निर्णय करनेमें दक्ष महानुभाव उचित अवसरपर बहुसमयव्यापी परीक्षाद्वारा इन विषयोंकी मीमांसा करेंगे। सारनाथके भास्कर्य्य-संग्रह-से ही भारतीय पुराणतत्व (mythology) की भी बहुतेरी बातें प्रकाशित हुई हैं। संग्रहीत विविध प्रस्तर खंडोंपर बौद्ध-पुराणान्तर्गत जातकोंकी घटनावलियां भी अंकित हैं। (२) शिल्पतत्व, मूर्त्ति-तत्व पुराणतत्वको छोड़कर ऐतिहासिक और पुरातत्वमें भी सारनाथका भास्कर्य्य-संग्रह यथेष्ठ मूल्यवान् है। यहांकी अनेक मूर्तियोंकी गढ़नसे मूर्त्तिकी लिपिका समय स्थिर किया गया है, अनेक मूर्त्तियों-का पत्थर देखकर भिन्न भिन्न स्थानोंके शिल्पियोंके भावोंका विनिमय भी जाना गया है, किसी किसी स्तूपोंकी शिल्प-पद्धतिसे मालूम हुआ है कि सिंहलद्वीपके शिल्पियोंके साथ भी सारनाथके शिल्पियोंका सम्बन्ध था। सुतरां, यह सार-नाथका म्युज़ियम ऐतिहासिकों या पुरातत्वज्ञोंके लिए दर्श-नीय शिक्षागार है। जिस प्रकार प्रयोगशाला (लेबोरेटरी) में

(२) क्षान्तिवाद जातक।

अभ्यास किये विना कोई मनुष्य वैज्ञानिक नहीं बन सक्ता, ठीक उसी भांति म्युज़ियममें शिक्षा प्राप्त किये विना कोई ऐतिहासिक या प्रत्नतत्वविद् नहीं हो सकता। यह बड़े दुःखका विषय है कि इस देशके लोग अभीतक इस ओर ध्यान नहीं दे रहे हैं। यूरोपमें म्युज़ियम देखे विना एवं देश-भ्रमण किये विना शिक्षा समाप्त नहीं हो सकती। हम अनेक विषयोंमें तो यूरोपका अनुकरण करते हैं किन्तु इस विषयमें हम बिलकुल पिछड़ गये हैं। तथापि मालूम होता है कि देशकी हवा कुछ फिरी है। जातीय चेष्टासे कहीं कहीं म्युज़ियम स्थापित करना आरम्भ हो गया है। यदि सारनाथके ऐतिहासिक संग्रहका निम्नलिखित सामान्य विवरण पढ़कर किसीके हृदयमें म्युज़ियमसे शिक्षा प्राप्त करनेकी आकांक्षा जागृत हो तो मेरा यह परिश्रम सफल होगा। अब मैं इस स्थानसे आविष्कृत द्रव्यादि तथा म्युज़ियमके संग्रहका यथासाध्य कालक्रमानुसार विभागकर स्थूल रूपसे वर्णन करूंगा।

मौर्य्यकालीन शिल्प-के नमूने।

सारनाथमें अबतक जो कुछ आविष्कृत हुआ है उसमें सबसे प्राचीन एवं सर्व्वोत्कृष्ट शिल्प निदर्शन महाराज धर्म्माशोकका सिंहयुक्त प्रस्तरस्तम्भ है। इसके पूर्व्व भारतके नाना स्थानोंपर अशोकके नव प्रस्तरस्तम्भ आविष्कृत हो चुके थे। उनकी भी बनावट और शिल्प-चातुर्यकी प्रशंसा देशी तथा विदेशी शिल्प-समालोचकोंने सैकड़ों मुंहसे की है। (३)

(३) The detached monolithic pillars erected by Asoka ** bear testimony......to the perfection attained by the early stone-cutters of India in the exercise of their craft." V. A. Smith in the Imp. Gazetteer of India Vol. II p. 109.

किन्तु इस स्तम्भके आविष्कृत होनेके पीछे सब लोगोंने एक वाक्यसे स्वीकार किया है कि इसकी अपेक्षा सुन्दर पाषाण स्तम्भ और नहीं हैं। स्तम्भके सिरपर चार सिंह-मूर्त्तियां वर्तमान हैं। प्राचीन कालमें इन सिंहोंके नेत्र मणिमय थे। इस समय वे मणियुक्त तो नहीं हैं, पर उनके मणियुक्त होनेके अनेक चिन्ह वर्तमान हैं। इन सिंहोंकी खोदाई इतनी स्वाभाविक और सुन्दर हुई है कि इसे देखते ही अनवरत प्रशंसा करनेकी इच्छा होती है। इन सिंहोंके नीचे चार चक्र हैं, दो दो चक्रोंके मध्यमें हाथी, सांड, अश्व तथा सिंह अंकित हैं। ये चक्र सम्भवतः बौद्ध चक्रके चिन्ह स्वरूप बनाये गये हैं। हाथी, सांड़, अश्व और सिंह यथाक्रमसे इन्द्र, शिव, सूर्य तथा दुर्गाके वाहन हैं। अतएव ये बौद्धधर्मकी अधीनताको सूचित करते हैं। परलोकगत डाक्टर ब्लकका यही मत है। इस स्थानपर यह देखने योग्य बात है कि उक्त चारों पशु चलते हुए ही अंकित किये गये हैं। चक्र भी चलते हुए दिखाये गये हैं। इसका तात्पर्य्य कदाचित् यह था कि जबतक ये जन्तु संसारमें चलते रहेंगे तबतक बौद्ध धर्म भी पृथिवीपर चलता रहेगा। हम डाक्टर ब्लकके इस मतको भी पण्डित दया-राम साहनीकी भांति अस्वीकार नहीं कर सकते। इस चित्रके नीचेका अंश घंटेके सदृश अंकित है। यह समग्र स्तम्भ-शीर्ष म्युजियमके प्रधान गृहमें स्थापित है और स्तम्भका निम्नांश अपने प्राचीन स्थानपर वर्तमान है। इसके अन्य भग्नांश भी इसके निकट ही रखे हैं। यह स्तम्भ-शीर्ष तथा स्तम्भ बलुये पत्थरके बने हैं। इसके ऊपर एक

अशोक-स्तम्भका शिखर (पृ० ८६)
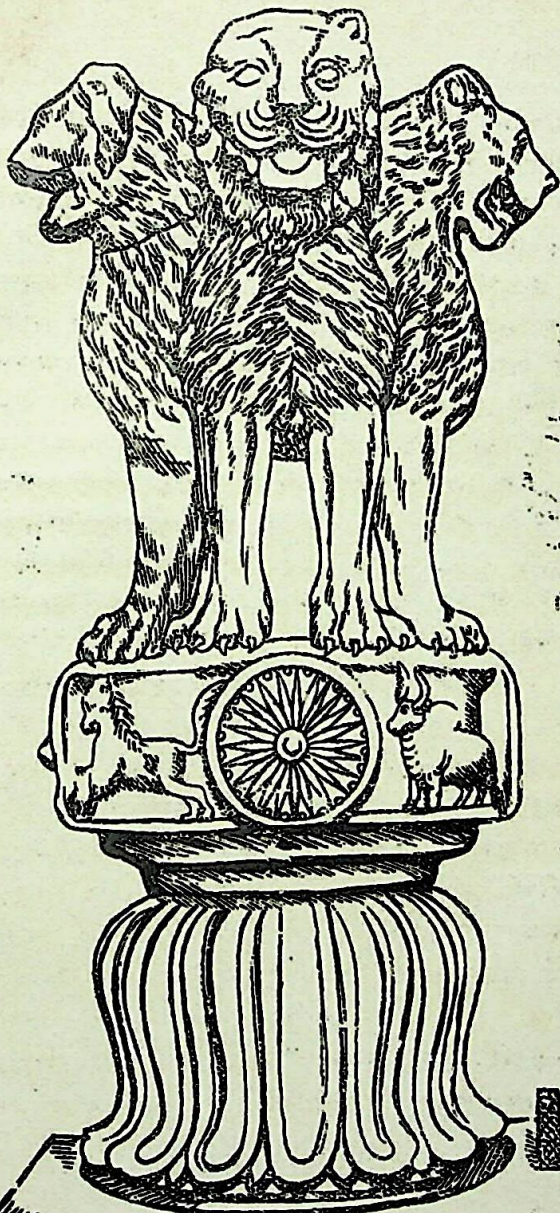
वज्रलेप है। (४) वज्रलेपकी चमक, उसका चिकनापन तथा उसका रंग देखकर अचम्भित होना पड़ता है और इतने प्राचीन युगमें भौतिक विज्ञान जिस उन्नतिको प्राप्त हुआ था इसका विचारकर आश्चर्यका पारावार नहीं रहता। (५) इस स्तम्भके मस्तकपर बौद्ध वाराणसीका प्रधान चिन्ह एक वृहत् धर्मचक्र था, इसका भग्नांश अब भी म्युज़ियममें सयत्न रक्षित है।

इस स्तम्भपर जो भिन्न भिन्न तीन खुदी लिपियां दिखायी देती हैं उनकी आलोचना अगले अध्यायमें विस्तारपूर्वक की जायगी। इस अध्यायमें जिन बातोंकी चर्चा की

---

(४) पूज्यपाद ऐतिहासिक तथा शिल्प समालोचक श्री युक्त अक्षय कुमार मैत्र महाशयका कथन है कि तन्त्रमें इस लेपकी रचना-प्रणालीका वर्णन है। बंगालके मासिक पत्रोंमें भी इसकी बहुत चर्चा हुई है।

(५) विन्सेण्ट स्मिथ अशोक स्तम्भको ग्रीक व पारस्य कला-पद्धतिके अनुसार बनाया गया बतलाना चाहते हैं। "*** The Asoka pillars may be described as imitations of the Persian columns of the Archalmanian period with Menestic ornament." सुप्रसिद्ध चित्र शिल्पी हावेल (Havell) ने थोड़े ही दिन हुए भारतीय शिल्पपर यूनानियोंका प्रभाव पड़नेके मतका खण्डन किया है। पेशावर म्युजियमकी २४१ नंबरकी मूर्त्ति एवं अन्यान्य मूर्तियोंको देखकर यह जाना जाता है कि ग्रीक शिल्पियोंके सदृश उनमें मांसपेशी (Muscles) की रचना करनेकी प्रवृत्ति न थी।

इन स्थूलोदर मूर्त्तियोंको देखकर उन्हें "भारतीय" छोड़ और कुछ नहीं कहा जा सकता। ग्रीक मूर्त्तियां स्थूलोदर नहीं होतीं। (cf. Sohrman's "Die Altindische saule" (Old Indian Halls)

गयी है, वे किन किन लिपियोंमें पायी गयी हैं, इसका विवरण भी वहीं दिया जायगा। यह अध्याय केवल लिपियोंके उल्लेख करनेमें ही समाप्त होगा।

मुख्यतः अशोक-स्तम्भके सिवाय मौर्य युगका और कोई शिल्प-निदर्शन सारनाथमें नहीं निकला। कुमरदेवीकी लिपिसे प्रकट होता है कि उन्होंने अशोक कालीन "श्री धर्म चक्रजिन" अथवा बुद्ध भगवान्‌की मूर्त्तिका संस्कार कराया था। (६) इतने समय तक इस सम्बन्धमें यूरोपीय लोगोंमें जो अज्ञान था, इस लिपिसे उसका अन्त हो गया और सत्यका प्रकाश हो गया। अब भी कितने ही यूरोपीय पुरातत्व-विशारदोंका मत है कि महायान सम्प्रदायके आविर्भावके पहिले बुद्ध या अन्य किसी देवताकी मूर्त्ति इस देशमें नहीं बनती थी। कुमर देवी यदि मिथ्यावादिनी न कही जाय;

(६) Epigraphica Indica Vol. IX, P. 325, also A.S.R. 1907-08, page 79.

* धर्म्माशोक नराधिपस्य समये श्री धर्म चक्रोजिनो
यादृक् तन्नय रक्षितः पुनरयञ्चक्रे ततोऽप्यद्भुतम्
वीहारः स्थविरस्य तस्य च तया यत्नादयङ्कारितः
तस्मिन्नेव समर्पितश्च वसतादाचन्द्रचण्डद्युति ।

डाक्टर वोगलने लिखा है:—A still further development in the History of Buddhism is illustrated by the numerous images of deities, of which the Sarnath excavations have yielded so many specimens. The worship of these no doubt formed a part of the popular religion of India at an early stage, in fact it may in many cases go back to Pre-Buddhist times."

तो यह स्वीकार करना पड़ेगा कि यह धारणा बड़ी ही भ्रांति-मूलक है। विद्वानोंको यह बात कभी स्वीकार नहीं हो सकती कि अशोक-स्तम्भ या सांचीके समान सूक्ष्म शिल्पोंके बनाने वाले शिल्पी, भगवान् बुद्धकी मूर्त्ति बनानेमें असमर्थ थे। यूरोपियनोंका यह विश्वास बिल्कुल प्रमाण-शून्य है। अतः हम उसे ग्रहण नहीं कर सकते।

मौर्य्ययुगका दूसरा निदर्शन अशोक द्वारा निर्मित एक सुन्दर पाषाण-वेष्ठनी (Railing) है। इसकी आलोचना प्रसंगवश अन्यत्र की गया है। यह पाषाण-वेष्ठनी प्रधान मन्दिरके दक्षिण वाले गृहमें ईंटोंके एक छोटे स्तूपके चारों ओर लगी हुई निकली है। इसमें आश्चर्यकी बात यह है कि यह वेष्ठनी एक ही पत्थरके टुकड़ेसे बनी है। उसमें कोई जोड़ नहीं है।

इसकी बनावट और पालिस साञ्ची और भरहुतमें पायी गयी रेलिङ्गके सदृश ही है। इस रेलिङ्गमें भी उसी प्रकारकी सूचियां लगी हैं जिस प्रकारकी सांची और भरहुत-में हैं। (७) उन रेलिङ्गोंपर जिस तरह दाताओंके नामकी छोटी छोटी लिपियां हैं उस भांति इसमें भी वर्तमान हैं। इस वेष्ठनीपर जो ब्राह्मी अक्षरोंमें एक छोटी लिपि है उससे प्रकट होता है कि "सवहिका" नामकी किसी मठ-वासिनीने इसे दिया था। मथुरा आदि स्थानोंमें बौद्ध युगके निदर्शन जिन्होंने देखे हैं, उनके लिये यह वेष्ठनी और सूची नयी नहीं है।

---

(७) Anderson's "Archaeological catalogue Part I. Indian museum p.9.

शुंग युगका चिन्ह।

मौर्य युगके बाद शुङ्ग युगके एक सचित्र स्तम्भ-शीर्षने वैदेशिक शिल्पियोंको दृष्टिको आकर्षित किया है। यह स्तम्भ-शीर्ष (No. D 9. 4) प्रधान मन्दिरके पश्चिमोत्तर कोणकी ओर मिला था। यह चपटा और दोनों ओर चित्रित है। एक ओरके चित्रमें एक पुरुष बड़े तावसे घोड़ा चलाता है। अश्वका गति-भङ्ग, पुरुष-मूर्त्तिका हिलना एवं मुखका भाव इत्यादि देखने योग्य है। यह सम्पूर्ण चित्र स्वाभाविकतासे परिपूर्ण है और भारतकी प्राचीन चित्रकला-पद्धतिके अनुसार बनाया गया है। दूसरी ओरके चित्रमें एक हस्तीपर दो पुरुष आरूढ़ हैं। सामने महावत अंकुशकी मारसे हस्तीको चला रहा है। इसके पीछे एक व्यक्ति हाथमें पताका लिये बैठा है। अंकुशकी मार खाकर हाथी किस प्रकार सूंड़ सहित माथा ऊंचाकर पैर उठाये हुए है, आरोहीगण किस रूपसे तिरछे हो गये हैं, पताका किस भावसे सञ्चालित हो रही है, ये सब भाव बड़ी दक्षतासे अंकित किये गये हैं।

इसके अतिरिक्त शुङ्ग युगके कई एक वेष्ठनी-स्तम्भ भी विशेष उल्लेख योग्य हैं। (No. D a 1-12) ये मार्शल साहब द्वारा प्रधान मन्दिरके पूर्वोत्तर भूभागसे निकले थे। दो एकको छोड़ प्रत्येक स्तम्भके एक भागपर नानारूपके बौद्ध चिन्ह वर्त्तमान हैं। किसीपर माल्यादाम शोभित बोधिद्रुम, त्रिरत्न विज्ञापक त्रिशूल चिन्ह और किसीपर चक्र तथा चित्र खुदे हैं और किसीपर चक्र तथा छत्र वर्त्तमान हैं। D (a) 6 नं० स्तम्भपरके चित्र कौतूहल जनक हैं। आधा मनुष्य और आधा राक्षसवाली मूर्त्ति, हाथीके कान, तथा मछलीकी पूंछवाली मूर्त्ति, पुष्प, सिंह-मुख इत्यादि विशेष देखने योग्य हैं।

शुङ्ग युगका एक और चिह्न (B I नं०) पाया गया है। पुरुष मस्तकके दो ऐसे टुकड़े मिले हैं जिनमें दाहिना कान तो टूटा हुआ, पर बायाँ वर्तमान है। कानमें कोई आभूषण नहीं है। मस्तकपर देशीय प्रथाका सूचक जूड़ा बंधा है, जूड़ेको छोड़ शेष शिर मुंड़ा हुआ है। यह अटल साहबके समयमें प्रधान मन्दिरके निकटवर्त्ती स्थानसे आविष्कृत हुआ था।

कुशान युगकी बौद्ध मूर्तियां।

शुङ्ग युगके पीछे भारतमें कुशान युगका आविर्भाव हुआ शुङ्ग युगके सदृश कुशान युगमें भी कितने-हो ऐतिहासिक निदर्शन सारनाथके भू-खननसे आविष्कृत हुए हैं। ये सभी बुद्ध मूर्त्तियाँ हैं। अतः कुमरदेवी द्वारा वर्णित मूर्त्तिकी बातका ख्याल न कर विदेशी पुरातत्वज्ञोंने इनमेंसे ही प्रधान मूर्त्तिको सारनाथकी सबसे प्राचीन मूर्त्तिका नमूना ठहराया है। इनकी प्रधान युक्ति यह हैः—'सबसे प्राचीन बुद्ध मूर्त्ति गान्धारके बैक्ट्रियन (ग्रीक) शिल्पियों द्वारा निमित हुई। वहाँसे इसका नमूना मथुरामें लाया गया और मथुरासे इसका प्रचार भारतके सम्पूर्ण बौद्ध स्थानोंमें हुआ। सारनाथकी यह बोधिसत्व-मूर्त्ति (बुद्धि मूर्त्ति नहीं) मथुराके लाल पत्थरसे बनी है। इस मूर्त्तिके देनेवाले भिक्षु बलकी ठीक ऐसी ही मूर्त्ति मथुरामें मौजूद है। (८) अतः स्वीकार करना पड़ता है कि सारनाथमें कोई मूर्त्ति इससे अधिक प्राचीन नहीं हो सकती।" हम इस युक्तिको स्वीकार करनेमें

(८) Sarnath Catalogue p. 18.

असमर्थ हैं और इसके विषयमें एक प्रमाणका उल्लेखकर इस मूर्त्तिके आकारादिका वर्णन करेंगे। गान्धार या पेशावरमें अब तक जितनी बौद्ध कालीन मूर्त्तियाँ मिली हैं उनमें-से किसी भी मूर्त्तिको इस मूर्त्तिकी अपेक्षा पुरातत्वज्ञोंने प्राचीनतर प्रमाणित नहीं किया है। इस मूर्त्तिपर खुदी हुई लिपिको ही ये लोग कनिष्कके राज्यकालके तीसरे वर्षकी बतलाते हैं। यह मूर्त्ति आकारमें प्रायः ६ फुट ५ इञ्च ऊँची है। इसका दाहिना हाथ टूटा है। करतलमें चक्र और प्रत्येक अंगुलीके सिरेपर शुभ-लक्षण-सूचक चिह्न खुदे हैं। ये दोनों चिह्न महापुरुषोंके लक्षणोंके अन्तर्गत हैं और बुद्धत्वके भी परिचायक (सूचक) हैं। इस मूर्त्तिका बायाँ हाथ कुछ तिरछे रूपमें कमरपर रखा हुआ है। कमरसे नीचे एक "अन्तरवासक" (धोती) पट्टी द्वारा बंधा है और ऊपरी भागपर 'उत्तरासंग" (चादर या डुपट्टा) है।

इसके वस्त्राभूषण आदिके देखनेसे यह मालूम होता है कि इस शिल्पीने स्वाभाविकताकी रक्षा करनेमें बड़ाही यत्न किया था। साहब लोगोंका विश्वास है कि इस तरहकी मूर्त्ति केवल ग्रीक लोगों द्वारा बनायी जा सकती थी। विपक्षमें अनेक प्रमाणोंकि रहते हुए भी वे यदि ऐसी ही बातें सदा कहते रहें तब तो लाचारी है और इसका कोई उत्तर नहीं है।

दोनों पैरोंके बीचमें एक छोटे सिंहकी मूर्त्ति है। "डाक्टर वोगल" का कहना है कि यह बुद्धके शाक्य सिंह नामका परिचय देती है। किन्तु बोधिसत्वके पैरोंके नीचे शाक्य सिंहकी मूर्त्ति किस कारण रह सकती है यह हमारी समझमें नहीं आता। हम तो यह समझते हैं कि जिस कारण अशोक

स्तम्भके शीर्षपर चार पशुओंमें सिंहकी भी मूर्त्ति वर्तमान है, ठीक उसी कारणसे अथवा महायान पथके अनुसार किसी भिन्न ही कारणसे यह सिंहकी मूर्त्ति बनायी गयी है। मूर्त्तिके मस्तकके ऊपर एक बहुत बड़ा छत्र बना था। यह छत्र टूट गया है, इसके दश खण्ड निकले हैं, ये टुकड़े जोड़कर म्युज़ियममें रख दिये गये हैं। छत्रके मध्य भागमें पद्मका सा आकार खुदा है। उसके चारों ओर अनेक वृत्त वर्तमान हैं। एक एक वृत्तमें नाना जन्तुओंकी मूर्त्तियां, त्रिरत्न, मछलियोंके जोड़े, शंख स्वस्तिक आदि चिन्ह खुदे हैं। छत्रके स्तम्भपर जो लिपि खुदी है उसका वर्णन षष्ठ अध्यायमें सविस्तर किया जायगा।

इस मूर्त्तिके सिवाय कुशान युगकी एक और मूर्त्ति विशेष उल्लेख योग्य है। इसका नम्बर B (a) 3 है। यह बोधिसत्वमूर्त्ति बहुत छोटी नहीं है। पांवोंके नीचेकी चौकीको मिलाकर इसकी ऊँचाई १० फुट ६ इञ्च है। मूर्त्तिका मस्तक टूट गया है। दाहिना हाथ ठीक पूर्वोक्त मूर्त्तिके सदृश है। इसका बायां हाथ कमरपर नहीं, परन्तु जांघपर वर्तमान है। इस मूर्त्तिका वस्त्र क्रमशः मिटता जाता सा मालूम होता है। इसके दोनों पैरोंके मध्यमें अस्पष्ट रूपसे जो एक छोटी मूर्त्ति दिखायी देती है अनुमानतः वह भी पूर्वोक्त B (a) I मूर्त्तिके सिंहके सदृश है। मूर्त्तिके चरणके दोनों ओर नम्र भावसे युक्त दो छोटी मूर्त्तियां देखी जाती हैं। सम्भवतः ये दोनों दो दाताओंकी मूर्त्तियां हैं। मस्तकके पीछे एक बड़ा प्रभामण्डल (Halo) था जिसका चिन्ह अभी तक वर्तमान है। इस मूर्त्तिपर पहिले लाल रंगका लेप लगा था, दोनों पैरोंमें

इसका चिन्ह अब तक मौजूद है। यह मूर्त्ति अर्टल साहब द्वारा की गयी खुदाईमें प्रधान मन्दिरके दक्षिण पूर्वकी ओर एक मध्य युगके स्तूप सहित निकली थी। इस मूर्त्तिपर जो छत्र लगा था वह तो प्राप्त नहीं हुआ किन्तु छत्रदण्ड इस मूर्त्तिके निकटही भूमिमें गिरा हुआ पाया गया है।

इस मूर्त्तिके अतिरिक्त एक और मूर्त्तिके प्रभामण्डलका अंश कुशान युगका बतलाया गया है B (a) 4.। इसके सामनेके भागपर पीपलके पत्ते खुदे हैं। इससे यह अनुमान होता है कि जिस मूर्त्तिका यह अंश है वह मूर्त्ति गौतम बुद्धके बुद्धत्व लाभ करनेके पीछेकी अवस्थाको सूचित करनेके लिए बनी थी। मूर्त्ति अब तक नहीं पायी गयी है। इस पत्थरको लाल वर्णका देखकर यह मालूम होता है कि यह समूची मूर्त्ति मथुराके शिल्पियों द्वारा बनायी गयी थी, ऐसा पंडित दयाराम साहनीका अनुमान है।

इन ऐतिहासिक निदर्शनोंको छोड़कर और भी कुशान युगके कई नमूने म्युज़ियममें रखे गये हैं। किन्तु प्रयोजनाभावसे प्रत्येकका विशेष परिचय देना हम आवश्यक नहीं समझते।

गुप्त युगही सारनाथकी मूर्त्तिकारीके अभ्युदयका युग है।

गुप्त युगकी मूर्त्तियों-का परिचय।

सारनाथमें इसी युगको मूर्त्तियां सबसे अधिक हैं। इनकी कारीगरीमें अन्य युगकी मूर्त्तियोंकी अपेक्षा अधिक सफाई और सुन्दरता है। बोधिसत्व या बुद्धकी मूर्त्तियोंमें आसनों और मुद्राओंके भेद बड़ी स्पष्टतासे दिखलाये गये हैं। बोधिसत्वके लक्षणोंके अनेक चिन्ह इन मूर्त्तियोंमें

पाये जाते हैं। सारनाथमें इस युगकी बड़ी बढ़िया बढ़िया मूर्त्तियां निकली हैं। हम यहांपर सिर्फ नमूने (type) के तौरपर एक एक मूर्त्तिको एवं विशिष्टताज्ञापक कुछ और मूर्त्तियोंकी चर्चा करेंगे। कारीगरीके लिहाजसे गुप्त युगकी बुद्ध मूर्त्तियोंका यथेष्ट महत्व है। पुरातत्व-विशारद डाक्टर वोगल तकने इन मूर्त्तियोंको बौद्धतत्व-प्रकाशक कहकर इनके शुद्ध और प्रशान्त भावोंके स्पष्ट चित्रणकी बड़ी प्रशंसा की है। (९) इस युगकी मूर्त्तियोंके शिल्पमें वह सरलता नहीं है जो कुशानयुगकी मूर्त्तियोंमें है। फिर भी ये मूर्त्तियां शिल्पज्ञोंके लिये आदरको वस्तु हैं। मूर्त्तियोंके प्रभामण्डलके ऊपर नाना भांतिके लता-पत्र और अलंकार चित्रणकी कारीगरी असभ्यता सूचक नहीं हो सकती। इस युगकी मूर्त्तियां कुशान युगकी मूर्त्तियोंकी अपेक्षा छोटी और आर्य-भाव-प्रकाशक हैं। उनसे स्वाभाविकता झलकती है। कुशान युगकी मूर्त्तियोंके मुख देखकर मंगोलियन (कारीगरी) का जो भ्रम होता है वह इस युगकी मूर्त्तियोंको देखकर नहीं होता। इस बातका ऐतिहासिक प्रमाणोंसे भी सम्बन्ध है क्योंकि गुप्त युग ही बौद्ध पौराणिकताके विकासका समय था अतः इस युगकी मूर्त्तियोंपर भी उसके विविधि चिन्ह पाये जाते हैं। (१०) गुप्त युगमें बोधिसत्वकी पूजाका बहुत

(९) Some of the Buddha Statues of this period, by their wonderful expression of calm repose and mild serenity, give a beautiful rendering of the Buddhist idea" Sarnath Catalogue p. 19.

(१०) यूची लोग मंगोलियासे ही आये थे। कुशान लोग यूचीलोगोंकी ही एक शाखा थे।

नीचेकी ओर आधी खुदी हुई एक स्त्री-मूर्त्ति दिखलायी पड़ती है। यह वसुन्धराकी मूर्त्ति है। वसुन्धरा बुद्धकी अलौकिक कार्यावली देख उनके निकट आयी है। (१५) चौकीके बीचमें एक स्त्री-मूर्त्ति सिर खुले भागती हुई बनायी गयी है। यह मारकी कन्या है, बुद्धका जय प्राप्त करना देखकर वह भाग रही है।

B (b) 173.—यह मूर्त्ति भी पूर्वोक्त मूर्त्तिकी तरह है। केवल यही दो एक विशेष भेद हैं। इस मूर्त्तिकी चौकीके मध्य भागमें सम्बोधिस्थान उरुविल्ववन सूचक एक सिंह-मूर्त्ति वर्तमान है। बुद्ध भगवान्‌के तलुएमें महापुरुषके लक्षणोंमेंसे दो चक्र अंकित हैं। मूर्त्तिकी चौकीके सम्मुख भागमें द्वितीय कुमार गुप्तका एक पंक्तिका लेख है।

"दे [य] धर्मोऽयं कुमार गुप्तस्य"।

B (b) 181.—यह धर्म चक्र-प्रवर्तनमें निमग्न बुद्ध-मूर्ति है। सारनाथमें गुप्त शिल्पकी यह श्रेष्ठ मूर्त्ति मानी जा सकती है। श्री अर्टलके नये आविष्कारमें यही सबसे पहले पायी गयी थी। अनेक कारणोंसे यह मूर्त्ति शिल्पियों और ऐतिहासिकोंमें प्रसिद्ध हो गयी है। सार-नाथ धर्मचक्र-प्रवर्तनका स्थान है—इसे अत्यन्त स्पष्ट रूपसे यह मूर्त्ति सूचित करती है। बहुतोंका मत है कि जब बुद्ध-मूर्त्तियां नहीं बनायी जाती थीं तब धर्मचक्र-प्रवर्तनका

(१५) जब बुद्ध भगवान् सम्यक् सम्बोधिको प्राप्त हुए उस समय मारने इनसे प्रश्न किया कि "तुम्हारा साक्षी कौन है कि तुम सम्बोधिको प्राप्त हुए"। उन्होंने उत्तर दिया "पृथ्वी" इतना कह उन्होंने धरतीकी ओर हाथ लटकाया।

चिन्ह केवल चक्र ही था । हमारा यह कहना है कि बौद्ध धर्मके प्रथम प्रचारके इसी स्थानपर सबसे पहले इस नमूनेकी मूर्त्ति बनी । इन सब मूर्त्तियोंमेंसे मृग और पंचवर्गीय-गणकी मूर्त्तियां सारनाथके प्राचीन युगका परिचय देती हैं । ऐसी मूर्त्तियोंके बननेके पीछे 'धर्मचक्र मुद्रा'की सृष्टि हुई । गान्धार जैसे दूरवर्ती प्रदेश तकमें भी यह मुद्रा सुपरिचित थी । डाक्टर वोगलका मत है कि गान्धारमें परिचित इस मुद्रासे सारनाथका कोई विशेष सम्बन्ध नहीं, एक मात्र श्रावस्तीसे ही इसका सम्बन्ध है । (१६) हम उनका यह मत स्वीकार करनेमें असमर्थ हैं क्योंकि गान्धारमें एक दो नहीं अनेकों धर्मचक्र-प्रवर्तन-निरत बुद्ध-मूर्त्तियां मिली हैं । (१७) कोई इसका भी प्रमाण नहीं दे सकता कि उन मूर्त्तियोंको देखकर यह मूर्त्ति बनायी गयी है । डाक्टर स्पूनरने बल्कि यह दिखला दिया है कि गान्धारकी मूर्त्तियां ही सारनाथके मृग आदि चिन्होंपर प्रकाश डालती हैं । (१८) इससे यह मालूम पड़ता है कि इस मूर्त्तिका नमूना सारनाथमें पहिले पहिल बनाया गया । पीछेसे ऐसी मूर्त्तियोंका निर्माण अन्यान्य स्थानोंमें भी होने लगा। इस आकारकी मूर्त्तिका प्रचार वङ्ग देशमें भी था,इसके बहुतसे उदाहरण मिले हैं ।

(१६) Sarnath Catalogue p. 20.

(१७) Peshawar museum, sculptures No. 129, 145. 349, 455, 760, 762, 767, 773, 786, 1250, 1252.

(१८) Hand-book to the sculptures in the Peshawar museum, by Dr. D. B. Spooner Ph. D. (1910)

(१९) जिस मूर्त्तिके विषयमें हम लिख रहे हैं उसकी ऊंचाई ५ फुट ३ इञ्च है। मूर्त्तिके सब अङ्ग पूरे हैं। धर्मचक्र-मुद्राके लक्षणानुसार दोनों हाथ छातीके पास रखे हैं। दोनों पैर भारतीय योगियोंके आसनके सदृश बने हैं। मूर्त्तिको एक महीन और मुलायम वस्त्र पहिनाया जान पड़ता है। मस्तकके केश यथाविधि दाहिनी ओरको मोड़कर सजाये गये हैं किन्तु हम समझते हैं कि दोनों नेत्रोंकी दृष्टि नीचे पड़ती है अर्थात् मूर्त्ति ध्यानमग्न अवस्थामें है। मूर्त्तिकी चौकीके बीचमें घूमता हुआ धर्मचक्र है जिसके दोनों ओर दो मृगों और सात मनुष्योंकी घुटनेके बल बैठी हुई मूर्त्तियां वर्तमान हैं। इनमेंसे पांच जो मुंड़े सिर हैं वे वही पञ्चवर्गीय बुद्ध भगवान्के प्रथम शिष्य हैं, और बाकी दो इस मूर्त्तिके दाता और स्थापित करने वाले हैं। मूर्त्तिके मस्तकके पीछे नाना भांतिके चित्रोंसे युक्त एक प्रभामण्डल है। प्रभामण्डलके ऊपरके किनारोंपर दो देव मूर्तियां भी हैं। प्रभामंडलके मध्य भागमें किसी प्रकारकी चित्रकारी नहीं हैं। (२०) इसके नीचे बुद्ध भगवान्के

(१९) Descriptive List of sculptures of Coins in the museum of the Bangiya Sahitya Parishad, by R. D. Banerji M. A. p, 17. Sculpture No. 230.

(२०) हमारा अनुमान है कि यह बौद्धका सचित्र प्रभामण्डल बना देखकर ही बंग देशमें वर्तमान दुर्गाकी प्रतिमामें चित्रकारीका प्रकाश हुआ। इस बुद्ध मूर्त्तिके पीछेका पत्थर और प्रभामण्डल दुर्गाजीकी प्रतिमाकी "चालके सदृश है। भेद इतना है कि इस प्रभामण्डलमें देव-देवीकी मूर्त्तियां अंकित नहीं हैं। दुर्गाकी "चाल" में देवताओंके चिन्ह ही अधिकांश संयुक्त है। "सूर्यमुखी" चाल एक दम गोल होती है। उसे देख मेरे प्रभामण्डल होनेका भ्रम होता है।

दोनों ओर सिंहके सदृश ड्रैगन (दैत्य) मूर्त्तियां खुदी हैं ।(२१)

इस सारी मूर्त्ति की बनावट ऐसी अच्छी और स्वाभाविक है कि ड्रैगनका कोई विलायती चित्र भी इसकी अपेक्षा उत्कृष्ट नहीं है। बुद्ध-मूर्त्ति की अंग-भंगी (देहरचना) अत्यन्त स्वाभाविक है। ऐसा प्रतीत होता है मानो आंखोंके सामने कोई सुन्दर फोटो या स्टैच्यू (मूर्त्ति) रखी हो। गलेकी तीन रेखाएं तक बड़ी सुन्दरतासे दिखलायी गयी हैं। मुखका भाव ऐसा सौम्य और प्रशान्त है कि जिसका वर्णन करनेके लिए सहृदय मनुष्यकी भाषामें भी कोई शब्द नहीं है। मूर्त्ति-कार 'हयावेल' ने विमुग्ध होकर इसकी प्रशंसा की है। (२२)

B (b) 186—यह "धर्मचक्र मुद्रा" रूपमें बैठी हुई बुद्ध-मूर्त्ति है, प्रधान मूर्त्ति के अगल बगल बोधिसत्वकी मूर्त्तियां विराजमान हैं। प्रधान मूर्त्ति यूरोपीय ढंगसे बैठी हुई है। इस मूर्त्ति के दोनों पैर टूटे हैं। प्रभामण्डलमें किसी प्रकारकी चित्रकारी नहीं है। प्रभामण्डलके दोनों सिरोंपर हाथमें माला लिये दो देव मूर्त्तियां उड़ती हुई चित्रित हैं। बुद्धमूर्त्ति की दाहिनी ओर बोधिसत्व मैत्रेय एक छोटीसी मृगछाला लिये खड़े हैं। बोधिसत्वके दाहिने हाथमें नियमानुसार जपमाला और बायें हाथमें अमृतघट वर्तमान है। बुद्ध भगवान्के बायीं ओर अवलोकितेश्वर या पद्मपाणि बोधिसत्वकी मूर्त्ति है। मूर्त्ति का दाहिना हाथ "अभय मुद्रा" रूपमें

(२१) Indian Sculpture and Painting p. 39.

(२२) जिनका यह विश्वास है कि भारतके लोग ड्रैगनको नहीं मानते थे वे इन्हें अच्छी तरह देखें।

ऊपर उठा है और बायें हाथमें एक पद्म है। दो एक कारणों-से पूर्व मूर्त्तिकी अपेक्षा इस मूर्त्तिके प्राचीनतर होनेमें सन्देह होता है। शिल्पमें क्रमोन्नतिका सिद्धान्त स्वीकार करनेसे इस मूर्त्तिके प्रभामण्डलमें कारीगरीकी शून्यता और दूसरी मूर्त्तिमें कारीगरीकी उत्कृष्टता इस बातका सुबूत है।

B (b) 181 संख्याकी मूर्त्तिके विविध चिन्होंकी अधिकता इसका दूसरा प्रमाण है। गुप्त समयकी सभी मूर्त्तियां चुनारके बलुए पत्थरकी बनी हैं और प्रायः सभी मूर्त्तियां एकही पत्थरकी बनी और पत्थरकी ही चौकियोंपर वर्त्तमान हैं।

B (d) 1--यह पद्मके ऊपर खड़ी बोधिसत्व अवलोकितेश्वरकी मूर्त्ति है। मूर्त्तिका दाहिना हाथ नहीं है, बायां हाथ टूटा मिला और जोड़ दिया गया है। ध्यानानुसार बायें हाथ ("वामे पद्म धरं") में सनाल पद्म है। बोधिसत्वके लक्षणानुसार दाहिना हाथ वरद मुद्रामें है। (२३)

मूर्त्तिके ऊपरी भागपर कोई वस्त्र नहीं है। कमरसे नीचेका वस्त्र एक जड़ाऊ बन्धन द्वारा बंधा है। (२४)

---

(२३) "तत......आत्मानं भगवन्तं ध्यायेत्, हिमकर-कोटिकिरणावदात-देहमूर्त्त—जटा-मुकुटनमिताभकृतशेखरं विश्वनलिन-निषण्णशशिमंडलोर्द्धे पर्य्यङ्कनिषण्णसकलालङ्कारधरं स्मेरमुखं द्विरष्टवर्षदेशीयं दक्षिणेन वरदकरं वामकरेण सनालकमलधरं" Foucher Etude suri Icnographico Buddhique P. 25-26.

(२४) ठीक इसी ढंगकी एक सारनाथमें मिली हुई पद्मपाणि या अवलोकितेश्वरकी मूर्त्ति कलकत्तेके म्युजियममें रक्षित है। उस मूर्त्तिमें भी एक प्रकारका बन्धन देख पड़ता है। Anderson's Archaeological catalogue of the Indian museum Part II.

छातीके ऊपर होता हुआ हिन्दुओंके सदृश एक जनेऊ भी दिखलायी पड़ता है। केशकलाप योगियोंके जटा-मुकुटकी तरह वंधा है। उसी मुकुटके सामनेके भागमें अवलोकितेश्वरका प्रधान चिन्ह ध्यानी बुद्धकी "अमिताभ" मूर्त्ति अंकित है। बोधिसत्वके पांवपर उनके दाहिने हाथके ठीक नीचे दो प्रेत-मूर्त्तियां दिखलायी पड़ती हैं। इनको यह परम दयालु बौद्ध देवता दाहिने हाथसे अमृतधारा पान करा रहे हैं। ("कर विगलत्--पीयूषधारा--व्यवहाररसिकं") यह समग्र मूर्त्ति अवलोकितेश्वरके ध्यानके अनुरूप वनी है, केवल इसमें तारा, सुधन कुमार, भृकुटी और हयग्रीवकी मूर्त्तियां नहीं हैं। मूर्त्तिके सबसे निचले पत्थरकी चौकीपर गुप्ताक्षरमें दाताका नाम अंकित है। इस मूर्त्तिके ऊपरी अंशकी रचना विशेष प्रशंसनीय है।

B (d) 2—यह एक खड़ी हुई बोधिसत्वकी मूर्त्ति है। पंडित दयाराम साहनी अनुमानतः इसे मैत्रेय बोधिसत्वकी मूर्त्ति बतलाते हैं। हम उनसे सहमत नहीं हो सकते। कारण यह है कि ध्यानानुसार मैत्रेय बोधिसत्वके तीन नेत्र, और चार हाथ होने चाहिये तथा "व्याख्यान मुद्रा" युक्त उसका स्वरूप होना चाहिये। (२५) इस मूर्त्तिमें यह कुछ भी नहीं है। हां, मस्तकमें ध्यानी बुद्ध मूर्त्ति तथा दायां हाथ वरद मुद्राका, "दक्षिणे वरद करं" और वायें हाथमें सनाल पद्म देखकर हम इसे अवलोकितेश्वरकी ही मूर्त्ति कह सकते हैं।

(२५) "......विश्वकमलस्थितं त्रिनेत्रं चतुर्भुजं......व्याख्यान मुद्रा धरकर स्वयं......" Foucher Econographic Budhique P.48.

B (d) 6—यह ज्ञानके देवता बोधिसत्व मञ्जुश्रीकी मूर्त्ति है। मस्तक धड़से अलग पाया गया था। दाहिना हाथ टूटा है, सम्भवतः यह वरद मुद्रा रूपमें था। बायें हाथमें सनाल पद्म वर्तमान है। मस्तकके ऊपर मञ्जुश्रीके लक्षणानुसार ध्यानी बुद्ध अक्षोभ्य-मूर्त्ति अंकित है। मञ्जुश्रीके ध्यानानुसार इस मूर्त्तिकी दाहिनी ओर सुधन कुमार एवं बायीं ओर यमारिकी मूर्त्ति रहना उचित था। (२६) किन्तु इस मूर्त्तिकी दाहिनी ओर भृकुटी तारा और बायीं ओर मृत्यु-वञ्चन तारा अंकित हैं। मूर्त्तिके पीछेकी ओर गुप्ताक्षरमें "ये धर्महेतु प्रभवा" इत्यादि बौद्धमन्त्र खुदे हैं। (२७)

मध्य युगमें शिल्प निदर्शन।

गुप्त युगका अन्त होते ही भारतमें बौद्ध-धर्म हीन अवस्याको प्राप्त हुआ। बौद्धोंने धीरे धीरे हिन्दू तान्त्रिकोंके उपाय अनेक देव-देवियोंकी पूजा अपने समाजमें भी प्रचलित कर दी। इसी समयसे बौद्ध तान्त्रिकोंके, 'गुह्यधर्म्म' मन्त्रयान कालचक्र, वज्रयान आदि मतोंका आरम्भ हुआ। सब

(२६) "आत्मानं—मञ्जुश्रीरूपं विभावयेत्, पीतवर्णं व्याख्यानमुद्राधरंरत्न भूषणम् रत्नमुकुटिनं वामेनोत्पलं सिंहासनस्थं अक्षोभ्याक्रान्तमौलिनं भावयेत् आत्मानं। ततो दक्षिणपार्श्वे हुङ्कारबीजसम्भवः सुधनकुमारः वामपार्श्वे यमारिः" Ibid. p· 40.

(२७) बंगीय साहित्य परिषद्के म्युजियममें जो मञ्जुश्री-मूर्त्ति है, उसके हाथमें कमलके साथ तलवार है। कि इस आकारकी और नहीं मिली। इससे यह मालूम होता है ध्यानानुसार सब स्थानोंमें मूर्त्तिका परिचय नहीं पाया जाता Mr. Banerj's Parishad Catalogue p. 4. Image no. 16.

मतावलम्बी बौद्ध पूर्व कल्पित देव-देवियोंकी पूजा तो करते ही थे परन्तु अन्य नये नये देव देवियोंकी पूजा और स्थापना भी बड़ी रुचिसे करते थे। सारनाथमें भी बहुत सी ऐसी मूर्त्तियां मिली हैं। प्राचीन युगकी मूर्त्तियोंमें ध्यान-मुद्रा और भूमि-स्पर्श-मुद्रामें बुद्धकी बहुतसी मूर्त्तियां पायी गयी हैं। ये सब गुप्त--युगकी हैं। अतः उस समयकी अन्य बुद्ध मूर्त्तियोंकी नाईं उनका भी वर्णन होगा, यही समझ कर उनका विशेष परिचय यहां नहीं दिया है। नं० B (e) 1, B (c) 35, 38, 40, 42, 46, 57, 59, 61, इत्यादि नं० की धर्म-चक्रप्रवर्तन--निरत बुद्ध मूर्तियां भी बहुत सी मिली हैं परन्तु विशेष और आवश्यक मूर्त्तियों-का परिचय देना ही यहां हम ठीक समझते हैं।

B (c) *1*—यह धर्मचक्र मुद्रामें बैठी हुई बुद्ध मूर्तिका निचला भाग है। मूर्तिके केवल दोनों पैर एवं चौकी दिखायी पड़ती है। शेष भाग सब टूट गये हैं। चौकी देखनेमें अति सुन्दर है। सारनाथमें किसी भी मूर्तिकी चौकी ऐसी सुन्दर नहीं है। चौकीके ऊपरी किनारेपर महीपालका विख्यात लेख एवं निचले किनारेपर "ये धर्महेतु" इत्यादि बौद्ध मन्त्र खुदे हैं। इन दोनोंके बीचका हिस्सा सात भागोंमें विभक्त है। एक एक भागमें एक एक मूर्ति वर्त-मान है। बिलकुल बीचों बीच "धर्मचक्र" है जिसके इधर उधर दो मृग बैठे हैं। उनके दोनो ओर दो सिंह मूर्त्तियां और उन मृगोंके मुंहके सामने दो बौने आदमी बुद्ध भगवान-का आसन धारण किये हुए हैं। अनुमान है कि ये

दोनों मनुष्य--मूर्त्तियां मार और उसकी कन्याकी हैं। इस चौकीपर पञ्चवर्गीय ऋषियोंका चित्र नहीं है।

B (c) 2—यह भूमिस्पर्शमुद्रामें बैठी हुई बुद्ध मूर्ति है। यह मूर्त्ति देखनेमें अति सुन्दर है, इस श्रेणीकी मूर्त्तियों में इसे श्रेष्ठ आसन दिया जा सकता है। मूर्त्तिके सिंहासनका ऊपरी भाग अति सुन्दर चित्रमय एवं स्तम्भ युक्त घरके सदृश है। मूर्त्तिके कन्धेके दोनों ओर दो देव मूर्त्तियां हाथमें माला लिये बैठी हैं। यहां पर उल्लेखनीय बात यह है कि मूर्त्तिका प्रभामण्डल गोलाकार नहीं है किन्तु कुछ कुछ अण्डाकार है। मालूम होता है कि इसी समयसे प्रभामण्डलने दुर्गाजीकी प्रतिमाकी "चाल" का आकार धारण किया है।

B (c) 4 3—यह कमलपर साहबी चालसे बैठी हुई बुद्ध मूर्ति है इसके मस्तक नहीं है और हाथ पैर भी टूटे हैं। मूर्तिकी दाहिनी ओर चंवर और अमृत घट धारण किये हुए मैत्रेय बोधिसत्त्व एवं बायीं ओर अवलोकितेश्वर चंवर और पद्म धारण किये खड़े हैं। मूर्तिके पैरके नीचे पंचवर्गीय ऋषियों तथा दाताकी मूर्ति भी हैं।

B (d) 8—यह "ललितासन" या "अर्धपर्य्यङ्क" आसन में बैठी हुई अवलोकितेश्वर बोधिसत्त्वकी मूर्त्ति है। दाहिना हाथ वरद मुद्रामें और बायां हाथ कमल धारण किये हुए जांघपर है। मूर्तिके शरीरपर अनेक आभूषण हैं। गलेमें एक हार है, जनेऊके सदृश पड़ा हुआ एक दूसरा हार भी है। बांहपर जड़ाऊ बाजू और नाभिसे नीचे एक अलंकार

है। मस्तकपर जटामुकुटके सामनेकी ओर नियमानुसार ध्यानी बुद्धों सहित अमिताभकी मूर्ति विद्यमान है। मूर्ति-का प्रभामण्डल B (c) 2 मूर्तिके सदृश मागधी ढंगसे बना है। प्रभामण्डलको दाहिनी ओर वरदमुद्रामें एक छोटी बुद्ध मूर्ति है। इस समग्र मूर्तिकी बनावट अति सुन्दर है। चौकीपर नवीं शताब्दीके अक्षरोंमें बौद्ध मन्त्र खुदे हैं।

B (b) 17—यह पद्मपर बैठी हुई वरद मुद्रामें अवलोकितेश्वर बोधिसत्वकी मूर्ति है। ऊपर पांच ध्यानी बुद्धोंकी मूर्त्तियां हैं उनके बीचमें अमिताभकी मूर्ति है। दाहिनी ओर तारा, जिसके नीचे सुधन कुमार और भृकुटी तारा जिसके नीचे हयग्रीवकी मूर्ति वर्तमान है। चौकीपर सामनेकी ओर दोनों कोनोंपर स्त्री पुरुषोंकी मूर्तियां देखी जाती हैं। यह मूर्ति अवलोकितेश्वरकी "साधना" का अनुकरण करती है एवं B (d) 1 मूर्त्तिके अभावको पूर्ण करती है।

B (d) 20—यह बोधिसत्वकी मूर्ति है। इसके मस्तक के ऊपर एक गुच्छेदार आभूषण है। इस मूर्तिके दाहिने हाथमें वज्र और वायें हाथमें "वज्रघंटा" है। प्रभामण्डल मागधी ढंगका है। मस्तकमें 'अक्षोभ्य" ध्यानी बुद्ध भूमि-स्पर्शमुद्रा रूपमें वर्तमान है। तिब्बतीय चित्रमें इस आ-कारके "वज्रघण्टा" युक्त हाथ वाली मूर्तिको "वज्रसत्व" बोधिसत्व मानते हैं। (२८)

(२८) पंडित दयाराम साहनी कलकत्ते म्युजियममें मगधसे लायी हुई मूर्ति नं० १९ को इसी प्रकारकी कहते हैं। किन्तु कलकत्तेके म्युज़ियमके केटलागमें इसका कुछ पता नहीं है। Sarnath Catalogue P. I26 Foot note.

B (f) 2—यह एक खड़ी तारा मूर्ति है। इसके हाथों-के अगले भाग नहीं हैं, दोनों कान टूटे हैं। सम्भवतः दाहिना हाथ "वरदमुद्रा" में था। बायें हाथमें सनाल नील कमल था, जिसका अधिकांश अभीतक दिखलायी पड़ता है। मूर्तिके ऊपरी भागपर कोई वस्त्र नहीं है, निचले भागपर एक बहुत महीन वस्त्र है। इस मूर्त्तिके अंगपर अनेक प्रकारके आभूषणोंका स्वरूप मालूम किया जा सकता है। कमरके नीचे लटकती हुई काञ्ची (२९), मस्तकपर मणि मुक्ताओंसे जड़ा हुआ पंचशिख मुकुट है और उसमें ध्यानी बुद्ध अमोघसिद्धिकी मूर्ति है। प्रधान मूर्तिकी दाहिनी ओर दाहिने हाथमें वज्र और बायें हाथमें अशोकका फूल लिये हुए मरीचि" मूर्ति एवं बायीं ओर लम्बोदर एकजटा" की मूर्त्ति है जिसके हाथ टूटे हुए हैं। खड़ी हुई प्रधान मूर्त्तिके दोनों ओर दो अनुचर मूर्त्तियोंका होना हम गुप्तकालीन मञ्जु श्री आदि नाना बोधिसत्वकी मूर्त्तियोंके समयसे ही देखते हैं और त्रिविक्रम इत्यादि विष्णु मूर्त्तियोंमें भी यही व्यवस्था देखनेमें आती है। इस तारा मूर्त्तिके भी सब लक्षण साधनानुसार है। (३०) यहां यह कह देना उचित

---

(२९) मालूम होता है कि इसी प्रकारकी काञ्चीको मुद्राराक्षसके २७ वें श्लोकमें "ताराविचित्ररुचिरं रशनाकलापं" कहा है।

(३०) "* * * * हरितामभोधसिद्धिमुकुटां वरदोत्पलधारि दक्षिण-वामकरात् अशोककान्त मारीच्येक जटाव्यग्र दक्षिणावामदिग् भागास् दिव्य कुमारीभूमलंकारवतीं ध्यात्वा * * Foucher L.' Iconographic Bouddhique P. 65.

तारा मूर्त्ति (पृ० १०६)

होगा कि बौद्ध तारा महायान समाजकी उपास्य देवी एवं बोधिसत्व पद्मपाणिकी एकमात्र शक्ति है।

B (f) 7—यह ललितासन रूपमें बैठी हुई तारा मूर्ति है। पूर्वोक्त तारा मूर्तिकी अपेक्षा इस मूर्तिमें दो एक विशेषताएं दिखलायीं पड़ती हैं। इस मूर्तिके पीछेका भाग मनुष्य मूर्ति व लता पत्रादिसे भरा हुआ है। पूर्वोक्त मूर्तिके सदृश इस मूर्तिके अंगपर उतने गहने नहीं हैं। नीचेकी ओर एक उपासक घुटनोंके बल बैठा है। मूर्तिको देखनेसे पहिले तो हिंदू मूर्ति "कमला"के होनेका भ्रम होता है किंतु लक्षणोंका मिलान करनेपर इसके बौद्ध ताराकी मूर्ति होनेमें कोई संदेह नहीं रह जाता।

B (f) 8—यह अष्टभुजा चतुर्मुखी वज्रताराकी मूर्ति है। बांया हाथ तो एक दम जड़से टूट गया है, दाहिनेका केवल कुछ अंश मात्र वर्तमान है। मूर्तिके तीन नेत्र हैं। मस्तककी जटामें दो अक्षोभ्य, एक अमिताभ और एक वैरोचनकी मूर्ति देख पड़ती है। पीछे वाले मस्तकपर केवल एक अमोघ सिद्धिकी मूर्ति अभय मुद्रारूपमें बैठी है। और दो मस्तकोंमें कोई मूर्त्ति नहीं है। मूर्तिके मस्तक और गलेमें अनेक अलङ्कार दिखलायी पड़ते हैं।(३१)

---

(३१) वज्र ताराकी साधना इस भांति है। * * * "अष्टबाहुं चतुर्वक्त्रां पद्मासनं अष्टमुद्रितां * * * पीत कृष्ण-सित-रक्त-उत्तराद्यं-चतुर्मुखीं, मतिमुखं त्रिनेत्रांच वज्र पर्य्यंङ्क संस्थिताम्"—Dhid P. 70 श्रीयुक्त राखाल बन्द्योपाध्यायकृत "बांगलार इतिहास" में वज्रपर्य्यङ्क पर बैठी वज्रताराका चित्र लगा हुआ है।"

B (f) 9—यह मस्तकविहीन वसुन्धराकी मूर्ति है। इस मूर्तिके अनेक भाग टूटे हैं। शरीरपर कई प्रकारके गहने हैं। दाहिना हाथ वरद मुद्रा रूपमें है। लक्षणानुसार बायें हाथमें धान्यमञ्जरीके मूल भाग देख पड़ते हैं। इस मूर्तिके प्रधान चिन्ह दो रत्न-घट दोनों पैरोंके नीचे रखे हैं। साधनानुसार घट बायें हाथमें होना उचित था। प्रधान मूर्तिके दोनों ओर दो छोटी छोटी वसुन्धराकी मूर्तियां हैं। इन दोनोंके हाथोंमें नियमानुसार धान्य-मञ्जरी एवं रत्नघट दिखायी पड़ते हैं। पहिले देखनेसे यह समग्र मूर्ति B (f) २ तारा मूर्तिके सदृश मालूम पड़ती है। लक्षणानुसार "अनेक सखीजन" इस मूर्त्तिमें नहीं हैं। स्मरण रखना चाहिये कि ध्यानानुसार प्रत्येक बातका विचार करते हुए न तो उस समय ही मूर्त्तियां बनती थीं और न अब बनती हैं। (३२)

B (f) 23—यह प्रत्यालीढ़पदा (पांव बढ़ाये हुए) मारीचि की मूर्त्ति है। इसके तीन मुंह और छ हाथ हैं। सामने का मुंह इधर उधर वाले दोनों मुहोंसे बड़ा है बायीं ओरका मुंह शूकरके सदृश है। दाहिनी ओरके ऊपरवाले हाथमें वज्र रहनेका चिन्ह मिलता है इसीलिए इस मूर्तिका दूसरा नाम वज्रवाराही भी है। इधरवाले दूसरे हाथमें बाण और तीसरेमे अंकुश वर्त्तमान है। बांयी ओरके पहले हाथमें अशोकका फूल रहनेका अनुमान कियां जाता है।

---

(३२) इस मूर्त्तिका साधनः—"* * * द्विभुजैकमुखीं, पीतां नवयौवनाभरण वस्त्र विभूषितां, धान्य मञ्जरी नानारत्न वर्ष—घट वामहस्तां, दक्षिणेन वरदां अनेक सखीजन परिवृतां, विश्वपद्म चन्द्राननस्थां रत्नसम्भवमुकुटिनीम्"

मारीची मूर्त्ति (पृ० ११०)

दूसरे हाथमें धनुष है और तीसरा हाथ "तज्जनीधर" मुद्रामें छातीपर वर्तमान है। दूसरे स्थानोंसे मिली मारीचि मूर्त्तियोंकी आठ भुजाएं हैं, किन्तु यहांकी मूर्त्तिमें केवल छः ही हैं। तीन मुखके लिए आठ भुजाकी जगह छः का ही होना उचित है। हमारा यह विचार है कि पहिले इस मूर्त्ति (मारीचि) की छः ही भुजाएं थीं, सम्भवतः बादमें इसकी आठ भुजाएं बनने लगीं। इसलिए सारनाथ-की यह मारीचि मूर्त्ति इस श्रेणीकी मूर्त्तियोंमें सबसे प्राचीन मानी जा सकती है। इस मूर्त्तिके मध्यवाले मस्तकमें साधनानुसार ध्यानी बुद्ध वैरोचनकी मूर्त्ति दिखलायी पड़ती है। इसकी चौकीके सामनेवाले भागमें सात छोटे छोटे शूकरोंकी मूर्त्तियां खुदी हुई हैं। ये मारीचिके रथके वाहन हैं। वाहनोंके मध्य भागमें एक स्त्री-मूर्त्ति रथ हांकने वाली-के सदृश दिखलायी पड़ती है। इस परका लेख अस्पष्ट होनेके कारण पढ़ा नहीं जा सकता। इस मूर्त्तिके अतिरिक्त मगध और बङ्गालके कई स्थानोंसे मारीचिकी मूर्त्तियां प्राप्त हुई हैं। कलकत्ते तथा लखनऊके म्युज़ियमोंमें और राजशाहीकी वरेन्द्र-अनुसन्धान-समितिमें नाना आकारकी मारीचिकी मूर्त्तियां देखी जा सकती हैं। कलकत्तेवाली मूर्त्तिका चित्र प्रोफ़ेसर फ़ूशेके मूर्त्तितत्वकी पुस्तकमें है (३३)

(३३) इस मूर्त्तिका साधनः—"* * सूर्यो पीतमोकारं ध्यात्वा, वह्निनिर्गत रश्मिनिवहै राकाशे समाकृष्य भगवतीं, अग्रतः स्थापयेत् गौरीं, त्रिमुखीं, त्रिनेत्रां, अष्टभुजां रक्तदक्षिणमुखीं; नीला विकृत वाम वराह मुखीं वज्राङ्कुश शर सूची धारि दक्षिण चतुः करां, अशोक पल्लव चाप सूत्र तर्जनी वाम चतुः करां वैरोचन मुकुटिनीं नानाभरणवतीं, चैत्यगर्भ स्थितां, रक्ताम्बर कञ्चुकोत्तरीयां, सप्त शूकर रथारूढां, प्रत्यालीढ पदां, *" Ibid, p. 72.

यह और मयूरभञ्जमें मिली हुई मूर्त्ति (३४) सारनाथवाली इस मूतिको अपेक्षा सुन्दर है। मारीचि मूर्त्तिका सूर्य्य-मूर्त्ति से सम्बन्ध रखनेकी अनेक चेष्टाएकी गयी हैं। सूर्य्य-मूर्त्तिके नीचे जिस तरह सारथी अरुण और "सप्तसप्ति वहः प्रीतः" आदिके अनुसार सात घोड़े हैं, उसी तरह इस मूर्त्तिके नीचे भी सात बराह हैं, जिनका सञ्चालन एक स्त्री कर रही है। डाक्टर वोगल सूर्यके सप्ताश्वोंको सात दिनों का रूपक अनुमान करते हैं एवं मारीचि मूर्त्ति को ऊषा कहते हैं, सम्भवतः यह उनका प्रमाद है। मैं यह समझता हूं कि सूर्यके सात वर्ण ही पौराणिक भाषामें सप्ताश्वरूपसे वर्णित हैं। स्पष्टतः देखा जाता है कि मारीचि शब्द "मरीचि" से निकला है इसलिये इस मूर्त्तिका सूयकी शक्ति होनेमें कोई सन्देह नहीं। मारीचिके सातों वराह तामसीके अन्ध-कारको अपने दांतों द्वारा भेदकर सूयंके उदयके पथको सुगम कर देते हैं यह बात भी इसे ही पुष्ट करती है। वराह-की उद्धार-शक्ति हिन्दुओंको भली भांति मालूम है। वारा-णसीमें बाराहीका एक मन्दिर है। ध्यान रखने योग्य बात है कि सूर्य्य उदय हानेके पहिले मूर्त्तिके दर्शन करनेका किसी-को अधिकार नहीं है। विष्णुके एक अवतारका नाम भी वराह और उसकी शक्ति वाराही है। आदित्य (सूर्य) भगवान् विष्णुका रूप है यह बात वैदिक साहित्यमें बारबार

(३४) Mayurbhanja Archealogical Survey p, X cii.

कहा गया है। (३५) अतः वाराही और मारीचि मूर्त्ति-का तत्व जटिल और रहस्यपूर्ण है। शाक्य मुनिकी माता-को भी मारीचि कहते हैं। इसके साथ उसका सम्बन्ध स्थापन करना और भी दुरूह है। प्राच्य-विद्या-महार्णव महाशयने मयूरभञ्जमें किसी किसी स्थानपर मारीचिको चण्डी नामसे पूजित होते देखा है। यह बात सबको मालूम है कि सूर्य्यका नाम "चण्डांशु" है। उन्होंने मयूरभञ्जमें जो दो वाराही मूर्त्तियोंका आविष्कार किया है, "मन्त्रमहोदधि" के ध्यानसे उनका मेल है। इसमें भी पृथ्वीके उद्धार-की बात ('वसुधया दंष्ट्रातले शोभिनीम्") लिखी है। तिब्बतमें वज्रवाराहीकी पूजा ' र दोरजे फग्मो " के नामसे अब तक होती है।

तिब्बतकी मूर्त्ति अनेक अंशोंमें हमारी तारा या काली मूर्त्तिके सदृश दिखती है। गलेमें मुण्डमाला, पैरके नीचे नर-मूर्त्ति (महादेव ?) है। उसके दोनों ओर डाकिनी और योगिनी हैं। मुख-मण्डल वाराहके ही सदृश है (३६)

---

(३५) "आदित् प्रत्नस्य चेतसो ज्योतिष पश्यन्ति वासरम्" म, मण्डल, ५ स १० सूक्त् आदि वैदिक मन्त्र सूर्यनारायणकी ही स्तुति हैं। गायत्री मन्त्र विष्णुका ध्यान "ध्येय सावितृमण्डल मध्यवर्ती," "नारायण" इत्यादिके मन्त्र, छान्दोग्योपनिषद हिरण्मय पुरुषके स्तवको तुलना करनेसे मालूम हो जाता है कि विष्णु को ही सूर्य कहते हैं। इसे छोड़ शतपथ ब्राह्मणमें (१०११ पृ 1st Bap. 11–12) किस तरहसे विष्णु आदित्य रूपमें परिणत हुए ये उसीका रूपक दिया हुआ है।

(३६) Abb. 131 and 118 Die gottin marici, grunwedel's mythologie dee Buddhismus in Libst under mongolei p. 145-157.

तिब्बतमें एक और मारीचिमूर्त्ति का नाम "ओद्-सेर-चनमो" है । यह मूर्त्ति रथपर चढ़ी है । इसके छः हाथ, तीन मुंह हैं । वराह उसके बाहन हैं । यह मूर्त्ति 'प्रत्यालीढ़पदा' (पांव फैलाये हुए) नहीं, प्रत्युत बैठी हुई है ।

B(h) 1—यह दस हाथ वाली शिव मूर्त्ति है । इसकी उंचाई १२ फुट है । इस उंचाईकी मूर्त्ति सारनाथके म्युज़ियममें दूसरी नहीं है । दो हाथोंसे पकड़े हुए त्रिशूल द्वारा एक राक्षस (त्रिपुर) का वध हो रहा है । दाहिनी ओर के और हाथोंमें यथाक्रमसे तलवार, दो वाण डमरू और एक और कोई वस्तु विद्यमान है । बाईं ओरके और हाथोंमें यथाक्रमसे, गदा, ढाल, पात्र, एवं धनुष हैं । असुरके दाहिने हाथमें तलवार है, बायां हाथ टूटा है । शिवमूर्त्ति-के पैरके नीचे एक असुरकी मूर्त्ति और बैलकी मूर्त्ति दिखलायी पड़ती है । समग्र मूर्त्तिको देखनेसे पहले तो हनुमान या महावीरकी मूर्त्ति होनेका भ्रम होता है । चित्रकूटमें हनु-मान धारा नामक पर्वतके ऊपर एक ऐसी ही महावीरकी मूर्त्ति है । महावीर या हनुमान महादेवका ही एक रूप है, इसे तो सभी लोग जानते हैं । सुतरां इस मूर्त्तिका महावीरके सदृश होना अकारण नहीं ।

सारनाथ म्युज़ियममें इन सब मूर्त्तियोंको छोड़कर और भी एक श्रेणीके शिल्पके नमूने हैं । वे एक भिन्न भिन्न समय-एक पत्थरके टुकड़े पर अंकित हैं । विशेष कर के खुदे हुए चित्र । इन पर बुद्ध भगवानके जीवन-चरित्रके चित्र अंकित हैं । किसी किसीपर तो उनकी जीवनी खुदी है और किसी किसीपर जातक कथाओंके

चित्र अंकित हैं। इनपर जो चित्र खुदे हैं वे सभी बौद्ध साहित्यमें उल्लिखित वर्णनोंके अनुसार हैं। इस कारण यहां उनके विस्तृत वर्णन देनेकी कोई आवश्यकता नहीं। उनकी विशेष आलोचना एक मात्र यही है कि बुद्धके जोवन-चरित्र या जातक कथाओंको पत्थरपर चित्रित करनेकी प्रणालीका आरम्भ पहले पहल कहांसे हुआ। बौद्ध मूर्त्तिके उत्पत्ति स्थानके सम्बन्धमें डाक्टर वोगलका जो मत है वही इस संबंधमें भी है। उनका कहना है कि गान्धारमें मिश्र बौद्ध शिल्पियों द्वारा ही बुद्धके जोवनकी अधिकांश घटनाएं सबसे पहले चित्रित हुईं। बौद्ध धर्मकी हानावस्थाके साथ साथ इन सब चित्रोंकी भी संख्या कम होने लगा, यह बात मथुरा-के अल्पसंख्यक चित्रोंसे ही प्रगट होता है और सारनाथमें भी वही अवस्था दिखलायी पड़ती है। हम इस बातसे सहमत नहीं हो सकते। पहिले तो गान्धारमें पत्थरके चित्र ही अधिक देखे जाते हैं। फिर, एक एक विषयके कई कई चित्र पुरातत्व-विभाग द्वारा प्राप्त हुए हैं। बुद्धके जन्म सम्बन्धा कितने ही चित्र जैसे sculptures No. ११७, ३६६, १२४१, १२४२, माया देवोके स्वप्न सम्बन्धा चित्र जैसे sculptures No. १३८, २५१, ३५०, १४७, २५१, इसो प्रकार महानिष्क्रमण आदि सम्बन्धा भी बहुतसे चित्र वहां हैं। इन चित्रों-को भली भांति देखनेसे इनके शिल्पकी परिणत अवस्थाके समझनेमें कोई सन्देह नहीं रह जाता (३७) परन्तु डाक्टर वोगल-की बात नहीं सिद्ध होती। सारनाथ और मथुराका मूर्त्तियोंकी

(३७) See for instance Sculpture No. 787 Hand book to the Peshawar museum by Dr. D. B. Spooner,

कमीका सम्बन्ध बौद्ध धर्मके ह्रासमे नहीं है। हां यहांके चित्रों-की प्राचीनता और गांधारके चित्रोंकी नवीनता इस घटी-बढ़ीका कारण हो सकती है। डाक्टर वोगलने विना किसी प्रमाणके ही स्थिर किया है कि सारनाथके सभी पत्थरपरके चित्र गुप्त समयके हैं। इसीसे उनके इस सिद्धान्तके ग्रहण करनेका साहस नहीं होता। मथुराकी पत्थरकी चित्रकारियोंमें उनके कथनानुसार यूनानी प्रभाव पाया जाता है, (३८) उनपर कपड़ोंका द्रश्य अति सुन्दर है। सारनाथके चित्रोंमें यह बात नहीं पायी जाती। वोगल साहेबके मतसे सारनाथके पत्थरके चित्र और मथुरा-के पत्थरके चित्र प्रायः समकालीन हैं। फिर डाक्टर वोगलने लिखा है "यह बड़ी ही आश्चर्यजनक बात है कि भारतीय मूर्त्ति-निर्माताओंने यूनानियोंसे ही पत्थरके चित्रके एक एक भागमें एक एक घटनाके अङ्कित करनेका ज्ञान पाया परन्तु फिर प्राचीन पद्धतिके अनुसार एक पत्थरपर बहुत घटनाओंके दिखलानेकी प्रथाका प्रवर्त्तन किया है।" डाक्टर वोगलको इस भांति आश्चर्य्यमें डालने वाले सारनाथके c(a) 2 नम्बर वाले प्रस्तर-चित्रके समान चित्र ही हैं। मालूम होता है कि डाक्टर महोदय पत्थरके चित्रोंके क्रम-विकासका रहस्य ठीक तरहसे समझ नहीं सके। साञ्चीके पत्थरके चित्रोंपर हम बौद्ध कहानियोंके चित्र देखते हैं। (३९) इस चित्रका

(३८) See slab No. H. I, H. II. Mathura catalogue by Dr. Vogel.

(३९) See the picture of the relief from the east gate-way at Sanchi.

समय विक्रमसे बहुत पहले है और यही सबसे प्राचीन पत्थरकी चित्रकारीका परिचय देता है। (४०) इन चित्रोंमें घटनाओंके अनुसार पत्थरोंका विभाग नहीं किया गया है। गान्धारके चित्रोंमें भी ऐसा ही किया गया है सारनाथके चित्रों-मेंघटनानुसार पत्थरोंका विभाग हुआहै औरकहीं एकहीपत्थर-पर अनेक घटनाएं चित्रित हैं इससे प्रमाणित किया जा सकता है कि सारनाथकी चित्रकारीमें ही इस तरहका चित्रकला सम्बंधी अवस्थान्तर-युग (Transitional Period) प्रगट हुआ था। इससे यह सारांश निकलता है कि गान्धारकी इस श्रेणी-को चित्रकारी सारनाथके चित्रोंकी ही नकल है। मथुराके चित्र इन दोनों पद्धतियोंके बीचके प्रतीत होते हैं। अब हम सारनाथके प्रधान प्रधान प्रस्तर-चित्रोंका वर्णन करेंगे।

C (a)1—यह एक ४′-५″ ऊँची और १′-२″ चौड़ी शिला है। इसपर बुद्ध भगवान्‌का जीवन-चरित्र अंकित है। यह चार भागोंमें विभक्त है। एक एक भागमें बुद्ध भगवान्‌के जीवनकी प्रधान और प्रसिद्ध घटनाएं प्रदर्शित हैं। सबसे नीचे वाले भागमें बुद्ध भगवान्‌की जन्मावस्था अंकित है। कपिल-वस्तुके निकट लुम्बिनी नामक उपवनमें बुद्ध भगवान्‌की माता मायादेवी शाल वृक्षकी एक डाली दाहिने हाथसे पकड़े खड़ी है। ऐसी अवस्थामें उसके दाहिने कोखसे गौतमका उत्पन्न होना और उसे इन्द्रका हाथोंमें लेना दिखाया गया है। ब्रह्माका चित्र अस्पष्ट है। मायादेवीकी बायीं ओर उनकी बहिन प्रजा-

(४०) Buddhist Art in India, by Prof. A. Grunwedel p. 62.

पति खड़ी हैं। बालक गौतमके मस्तकके ऊपर नागराज नन्द और उपनंद घड़ेसे सहस्र धारा द्वारा स्नान कराते हैं। सारनाथका यह चित्र शिल्पकी दृष्टिसे उतना मूल्यवान नहीं है। इस विषयके शैलचित्र सारनाथमें छोड़ गान्धार, मथुरा इत्यादि स्थानोंमें भी पाये गये हैं। (४१) उनकी तुलना इसके साथ करनेसे दो आवश्यक और महत्वपूर्ण बातें मालूम होती हैं। पहिली बात तो यह है कि गान्धार और मथुराके चित्रोंमें शिल्प-दृष्टिसे अनेक स्थानोंमें परिणत अवस्थाके चिह्न पाये जाते हैं। दूसरी यह कि, गान्धारके चित्रोंमें (जो इस समय कलकत्तेके म्युजियममें रखे हैं) अधिक घटनाएं अंकित देखी जाती हैं। जैसे गौतमके जन्म-समयके दो चित्र हैं एकमें तो जन्म और दूसरेमें "हम जगतमें श्रेष्ठ हैं" ऐसी वाणी कहते दिखाए गये हैं। इन दोनों बातोंसे अनुमान किया जाता है कि सारनाथके चित्र ही उनकी अपेक्षा प्राचीनतर हैं। सारनाथके म्युज़ियमकी तालिकामें यह शिला-चित्र गुप्त समयका बतलाया गया है। (४२) किन्तु किस किस प्रमाण-

---

(४१) Grunwedel's "Buddhist Art in India," p. 111-113 cf. fys. no. 64-65-66 Vogal's Mathura catalogue p. 30 pl. VI No. H. I.

(४२) इस शिलाके पीछेकी ओर गुप्ताक्षरसे "ये धर्म्महेतु" इत्यादि बौद्ध मन्त्र खुदे हैं। किन्तु इसके होनेसे यह प्रमाणित नहीं होता कि यह मूर्ति गुप्त युगकी है, कारण वही मन्त्र प्रत्येक कालकी मूर्त्तियोंमें पाया जाता है। यदि मूर्त्तिके दाताका नाम गुप्ताक्षरमें होता तबतो अवश्य ही इसे गुप्तकालिक कहते। एक ही शिलापर नाना युगकी लिपि उत्कीर्ण करनेकी प्रथा सुविदित है।
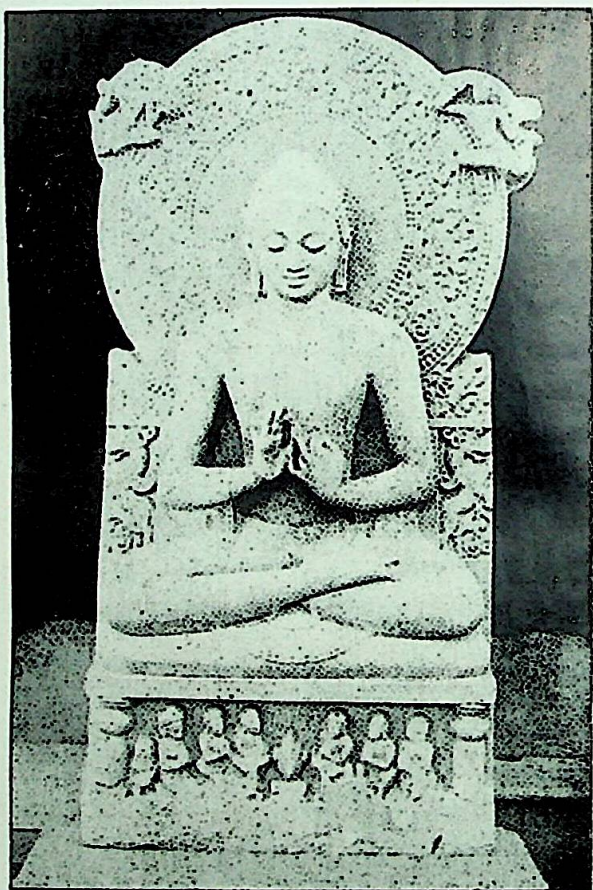
धर्मचक्र-प्रवर्त्तन-निरत-बुद्ध-मूर्त्ति (पृ० ११६)

से यह बात स्थिर की गयी है इस विषयमें सारनाथकी तालिकाने चुप्पी ही साध ली है।

इसके ऊपर वाले अर्थात् दूसरे भागमें गयामें गौतमकी "सम्बोधि"–प्राप्तिका चित्र और उसके ऊपर बुद्ध भगवान्‌के सारनाथमें "धर्मचक्र-प्रवर्तनका" चित्र और इसके ऊपर बुद्ध भगवानके महा परि-निर्व्वाणका चित्र अंकित हैं।

'सम्बोधि" वाले भागका परिचय इस प्रकार है—बोधि वृक्षके नीचे पहिले कहे हुए "भूमिस्पर्श मुद्रा" रूपसे बुद्ध भगवान् बैठे हैं। उनकी दाहिनो तरफ बायें हाथमें धनुष-एवं दाहिने हाथमें बाण लिये 'मार" (कामदेव) खड़ा है। उसके पीछे उसका एक साथी है। प्रधान मूतिके सम्मुख पराजित और विफलमनोरथ मारकी एक मूर्त्ति है। बुद्ध भगवान्‌की बाईं ओर मारकी दो कन्याएं बुद्ध भगवान्‌को मोहित करनेके लिए खड़ी हैं। भूमिस्पश मुद्राके अनुसार बुद्ध भगवान्‌के नीचेकी ओर बुद्धत्वकी साक्षी देने वाली वसुन्धराकी मूर्त्ति रहनी चाहिए, परन्तु इस अंशके टूट जानेके कारण इस मूर्त्तिका चिह्न तक नहीं देखा जाता।

"धर्मचक्र प्रवर्त्तन" चित्रमें बुद्ध भगवान् मध्यभागमें धर्मचक्र मुद्रारूपमें बैठे उपदेश दे रहे हैं। उनकी दाहिनी ओर अक्षमाला एवं चंवर लिये हुए बोधिसत्व मैत्रेय और बाईं ओर "वरदमुद्रा"में बोधिसत्व अवलोकितेश्वर खड़े हैं। इस चित्रके ऊपरी दोनों कोनोंपर दो देव मूर्तियां हाथमें माला लिये उड़ती दिखलायी पड़ती हैं। यहां ध्यान देकर देखनेकी बात यह है कि इन दो देव मूर्त्तियोंके पंख हैं। गान्धारको छोड़ इस प्रकारके पंख लगानेकी व्यवस्था भारतीय

शिल्पमें और कहीं नहीं पायी जाती । (४३) यह सत्य होनेसे सारनाथ और गान्धारमें घनिष्ठ सम्बन्ध होनेमें कोई सन्देह नहीं रह जाता । बुद्ध मूर्त्तिके नीचे यथारीति मृग, चक्र-चिन्ह और घुटनेके वल वैठे पंच वर्गीय ऋषिगण एवं दाताकी मूर्त्ति भी वर्तमान है । (४४)

सबसे ऊपर वाले भागमें बुद्ध भगवान्‌के देहावसान वा "महापरिनिर्वाण" का चित्र अंकित है । बुद्ध भगवान् छोटे छोटे पायों वाले एक पलङ्गपर दाहिने करवट सोये दिख-लायी देते हैं । पलङ्गके सामने सोते हुए उनके पांच शिष्य हैं । बुद्ध भगवान्‌का सबसे अन्तिम शिष्य कुशी नगरमें रहने वाला सुभद्र कमंडलको त्रिदडपर रख पीछे मुंह किये पद्मा-सन मारे वैठा है । बुद्ध भगवान्‌के पैरके पास राजगृहके महाकश्यप और मस्तकके पास पंखा झलते हुए उपवान भिक्षु वैठे हैं । बुद्ध भगवान्‌के पीछे भी पांच शोक विह्वल मूर्त्तियां दिखलायी पड़ती हैं । पंडित दयाराम साहनीने भूलसे पांचकी जगह चार ही लिखा है ।

C (a) 2–इस चित्रित शिलापर तीन पृथक् पृथक् भागोंमें बुद्ध भगवान्‌के जीवनकी चार प्रधान घटनाएं चित्रित हैं । ऊपरका अंश टूट गया है, परन्तु अवश्य एक भाग और रहा

---

(४३) Sarnath Catalogue p. 184-185.

(४४) पंडित दयाराम साहनीने लिखा है । Sarnath Catalogue, p. 185). The Sixth figure seems to have been added for symetry" इनकी बातमें एक वाक्यता नहीं है क्योंकि इन्होंने पहले कहा है कि छठीं मूर्ति दाताकी है । See Ibed p. 70

होगा। सबसे नीचेके भागमें बुद्ध भगवान्की माता महा-माया देवी स्वप्न देखती हैं कि बौद्धोंके तुषित नामक स्वर्गसे एक सफेद हाथीके रूपमें गौतम उतर रहे हैं। इस भांति माया देवीके गर्भमें बुद्ध आये। इस भागके दाहिने अंशमें बुद्ध कमलपर खड़े दिखलायी देते हैं। इसका सविस्तर वर्णन पहले ही C(a) 1 में हो चुका है। इस भागके ऊपर बाईं तरफ बुद्धके महाभिनिष्क्रमणका और दाहिनी तरफ सम्बोधिका चित्र है। महाभिनिष्क्रमण चित्रमें बुद्ध भगवान् कपिलवस्तुसे निकले जा रहे हैं। वे अपने सुसज्जित "कण्ठक" नामक घोड़ेपर सवार हैं। घोड़ेके मस्तकके निकट बुद्धका साईस "छन्दक" उनके हाथसे राजकीय अलङ्कारादि ले रहा है। घोड़ेके पीछे बोधिसत्व तलवारसे अपने मस्तकके बाल काट रहे हैं। सुजाता अपने हाथमें लिये हुए खीरका पात्र (बहुत दिनोंके उपवासके पीछे) बुद्ध भगवान्को दे रही है। इसीके पास ही बुद्ध भगवान् नागराज "सर्प-च्छत्र कालिक" के साथ बात चीत करते हैं इन चित्रोंकी दाहिनी तरफ बोधिसत्व छत्र लगाये, कमलपर बैठे हुए ध्यान कर रहे हैं। सबसे ऊपर वाले भागमें बाईं तरफ भूमिस्पर्श-मुद्रामें सम्बोधिलाभका चित्र है यथाविधि मार और उसकी कन्यायें उनको लोभ दिखला रही हैं। दाहिनी ओर धर्मचक्र-प्रवर्त्तन अर्थात् बौद्ध धर्म्मके प्रथम प्रचारका चित्र अंकित है।

C (a) 3—इसपर अंकित चित्र आठ भागोंमें विभक्त है। सबसे नीचेके भागके बायें किनारेमें यथाक्रमसे बुद्धका जन्म, दाहिने अंशमें उनका सम्बोधिप्राप्त करना, इसके ऊपर

वाले भागमें राजगृहके अलौकिक व्यापारके चित्र हैं। बुद्‌ध भगवान्‌ मध्य भागमें खड़े हैं। इसकी कथा इस प्रकार है—एक ब्राह्मणने बुद्‌ध भगवान्‌को उनके साथके पांच सौ भिक्षुओं सहित भोजनके लिए निमन्त्रण दिया था। वे जब उस ब्राह्मणके यहां जा रहे थे, तब बौद्‌ध धर्मके पीड़क देवदत्तने एक नालगिरि नामक मतवाला हाथी उन्हें कुचलनेके लिए भेजा था। हाथी बुद्‌ध भगवान्‌के प्रभावसे अवनत हो उनके सामने घुटनोंके बल सिर नीचा किये बैठा है। बुद्‌ध भगवान्‌के पीछे उनके प्रिय शिष्य आनन्दकी मूर्ति अंकित है। इसकी दाहिनी ओर वाले अंशमें बुद्‌ध भगवान्‌को पारिलेयक बनमें एक बन्दर द्वारा मधु प्रदान करनेका चित्र अंकित है। हाथमें मधु-पात्र लिये बुद्‌ध भगवान्‌की दाहिनी ओर बंदर खड़ा है। बुद्‌ध भगवान्‌के हाथमें भी एक पात्र है। बुद्‌धको मूर्त्तिके आसनकी बाईं तरफ दो पैर और एक पूंछ दिखलायी पड़ती है। इसका वर्णन इस प्रकार है।

बन्दर मधुप्रदान रूप पुण्य कार्य्यके अनन्तर दूसरे जन्ममें देवदेह पानेका आकांक्षाकर कूएंमें डूब रहा है इसके ऊपर हाथमें तलवार लिये उछलती हुई जो मूर्त्ति दिखायी पड़ती है वही बन्दरके दूसरे जन्ममें देवदेहकी मूर्त्ति है। इससे ऊपर वाले भागमें बुद्ध भगवान्‌के "त्रयस्त्रिंश" नामक स्वर्गसे उतरनेका चित्र है। बुद्‌ध भगवान्‌ वरद मुद्रामें छत्रधारी इन्द्र एवं कमंडल धारी ब्रह्माके बीचमें खड़े हैं। इसके बगल वाले भागमें स्रावस्तीकी अलौकिक घटनाका चित्र है। इसमें बौद्‌ध धर्मके विरोधियोंको चमत्कृत करनेके उद्देश्यसे बुद्‌ध

भगवान्‌के एक ही समयमें अनेक स्थानोंमें धर्म प्रचार करने-का चित्र है। मूल बुद्ध मूर्त्तिके कमलासनकी एक तरफ विश्वासी बुद्धभक्त हाथ वांधे बैठा है। दूसरी ओर अवि-श्वासी स्रावस्तीका राजा प्रसेनजित् इस अलौकिक व्यापारको देख चकित और विमुग्ध हो रहा है। पहले वणन किये हुए "त्रयस्त्रिंश" चित्रके ऊपर पूर्व वर्णित धर्मचक्र प्रवर्त्तन और दूसरे भागमें महापरिनिर्व्वाणके चित्र अंकित हैं।

D (a) 1—यह एक दर्वाज़ेके ऊपरका चित्रित पत्थर है। इसकी लम्बाई १६ फुट और ऊँचाई १ फुट १० इञ्च है। जिस द्वारपरका यह चित्र है, मालूम नहीं वह कितना बड़ा था। इसे देखकर सबको मुग्ध होना पड़ता है। वारवार देखनेपर भी तृष्णा नहीं मिटती। यह गुप्त समयका है, कारण इसपर बहुत स्थानोंपर "कीर्त्ति मुख" वा सिंहमस्तकके चिन्ह वर्तमान हैं। यह सारा पत्थर छः विभागोंमें विभक्त है। यथा क्रमसे दर्शककी बाईं ओरसे आरम्भ करनेपर प्रथम भागमें बौद्ध देवता, कुबेर वा जम्भल बीजपूरकफल दाहिने हाथमें, एवं बलभद्र बायें हाथमें लिये बैठे हैं। यथानियम उनका पेट बड़ा दिखाया गया है। दूसरे किनारेपर भी ऐसी ही मूर्त्ति है। प्रथम और द्वितीय भागके मध्यमें अति सुन्दर नकासीदार एक मन्दिरका शिखर खुदा है जिसके सम्मुख भागमें तीन गायकोंकी मूर्त्तियाँ हैं। द्वितीयसे पञ्चम भाग-तक "क्षान्तिवादि जातक" का विषय है। (४५) जातक-

(४५) The jataka (ed Fausboll) vol. III pp. 39-44 (Transed. Cowell) and jatakamala by M. M. Higgins published at Colombo, 1914.

का संक्षिप्त वर्णन इस भाँति है:--बोधिसत्वने इस जन्ममें क्लेश सहनेको प्रसिद्धि प्राप्त करके क्षान्तिवादी नाम पाया था। वे एक सुरम्य एवं निर्जन वनमें वास करते थे और इसी वनमें उनका दर्शन करनेके निमित्त बड़ी दूर दूरसे धर्म-प्राण व्यक्ति आते थे। एक दिन काशी नरेश "कलाबू" विश्रामार्थ अपनी सङ्गिनियोंके साथ उसी बनमें जाकर नाच गान, आमोद प्रमोद करने लगे। संगीत सुनते सुनते राजाको नींद आगयी। इधर उनकी सङ्गिनियाँ वनमे चारों ओर घूमती फिरती बोधिसत्वके निकट आ पहुंचीं। वे बोधि-सत्वकी अलौकिक तपस्या देख उनसे नाना भाँतिके उपदेश सुनने लगीं। इस बीचमें राजा निद्रासे सचेत हो अपने आस-पास किसीको भी न देख अन्तमें क्षान्तिवादीके पास आ उन्हें विविध प्रकारके कुवाच्य कहने लगा। क्षान्तिवादी चुपचाप बैठे ही रहे। फिर स्त्रियोंके हज़ार रोकनेपर भी राजाने बोधिसत्वका एक हाथ काट लिया। क्षान्तिवादी अब भी चुप रहे। धीरे धीरे पापी राजाने एक एक हाथ पैर काट डाला। क्षान्तिवादी फिर भी चुप रहे। इस भाँति योगीकी सहन शीलताको देख राजाके हृदयमें भय हुआ और वह अनुतापसे काँप उठा। किन्तु अब भय करनेसे क्या हो सकता था? समग्र बनमें प्रकांड अग्नि जल उठी, भयंकर भूकम्प होने लगा, क्षणमात्रमें राजा जलभुनकर भस्मीभूत हो गया। इस शिलाके दूसरे भागमें नाचनेवाली स्त्रियों द्वारा मना किये जानेपर भी राजा हाथ काट रहा है। इसके बाद एक मन्दिरका चित्र है। उसके सामनेवाले भागमें एक मूर्त्ति अंकित है। शिलाके तीसरे एवं चौथे भागमें

राजाकी सहचरियाँ वंशी-मृदंगके साथ नृत्य आदि करती हुई अंकित हैं। बीच बीचमें पहलेकी तरह एक एक मन्दिरका चित्र है। पाँचवें भागमें बोधिसत्व ध्यानमें मग्न हैं। इनके चारों ओर राजाकी नर्त्तकियाँ (नाचनेवाली स्त्रियाँ) खड़ी हैं। छठे भागमें फिर वही लम्बोदर जम्भलका मूर्त्ति है।

अन्य ऐतिहासिक संग्रह ।

हमने अवतक जिन शिल्प निदर्शनोंका वर्णन और आलोचना की है उन्हें छोड़ और भी बहुतसी मूर्त्तियाँ एवं खुदे हुए चित्र सारनाथके म्युज़ियममें संगृहीत हैं, किन्तु उनका वर्णन अनावश्यक समझकर नहीं किया गया है। मूर्त्ति एवं अंकित चित्रोंको छोड़ म्युज़ियममें अनेक प्रकारके नाना युगके टूटे हुए खंभे, छोटे छोटे मन्दिरोंके शिखर, घर, में लगे हुए पत्थरोंके टुकड़े, शिलालेख आदि रखे हुए हैं। साथ ही मिट्टीकी हाँड़ियाँ, मिट्टीके भिक्षापात्र, परई जलानेके दीये इत्यादि वस्तुएँ भी बहुत हैं। लिपियुक्त अति प्राचीन सिल एवं ईंट इत्यादि भी अनेक हैं। इनके वर्णन करनेकी कोई आवश्यकता नहीं है।

म्युज़ियमके बाहर उत्तरको ओर संवत् १९६१ (सन् १९०४) का बना हुआ एक छत्रदार लोहेके जंगलेसे घिरा हुआ (Old Sculptureshed) दोलान है। अब भी इसमें अनेक हिन्दू और जैन मूर्त्तियां रखी हैं। ये सब प्रायः सारनाथकी खुदाईसे नहीं प्राप्त हुई हैं। पहले ये सब क्वीन्स कालेजमें रखी थीं, फिर लार्ड कर्जनकी आज्ञानुसार यहां लायी गयी हैं। इनमें मध्ययुग एवं गुप्त युगकी जैन तथा हिन्दू मूर्त्तियां हैं। हिन्दू मूर्त्तियोंमें शिव,

अष्टमातृका, गणेश जी, इत्यादि और भी दो तीन प्रकारकी मूर्त्तियां हैं ? जैन मूर्त्तियोंमें नं० G 61 महावीर आदिनाथ, शान्तिनाथ और अजितनाथ हैं। नं० G 62 श्री अंशनाथकी मूर्त्ति है। हिन्दू मूर्त्तियोंको तो सभी लोग जान सकेंगे इसी कारण उनके सविस्तर वर्णन करनेकी कोई आवश्यकता नहीं जान पड़ती।

षष्ठ अध्याय

सारनाथमें मिले हुए शिलालेख

सारनाथकी खुदाईसे जिस भांति नाना प्रकारके शिल्पनिदर्शन, और बहुत प्रकारकी पत्थरकी मूर्त्तियां मिली हैं, ठीक उसी तरह सारनाथके इतिहासपर प्रकाश डालने वाली उज्ज्वल दीपमालाके सदृश अनेक प्रकारकी लिपियां भी मिली हैं। ये लिपियां अनेक प्रकारसे अनेक स्थानोंमें खोदी गयी थीं। मोटे तौरसे विचार करनेसे समस्त लिपियां चार भागोंमें विभक्त की जा सकती हैं। (१) अनुशासन मूलक, (२) प्रतिष्ठा मूलक, (३) दान विषयक, (४) उपदेश विषयक। ये लिपियां कहीं तो स्तम्भपर, कहीं वेष्ठनी (Railing) पर, कहीं छातेपर और कहीं मूर्त्तिकी चौकीपर खुदी हुई पायी जाती हैं। चौकीपर अंकित लिपियोंकी संख्या अधिक है। इन्हे छोड़कर, ईटोंपर, मुहरोंपर, मृण्मय कलशोंपर भी दो चार अक्षरोंकी लिपियाँ मिलती हैं। इतिहासके हिसाबसे तो इनका अवश्य कोई मूल्य नहीं है। केवल उनपर खुदे हुए अक्षरोंकी प्रवृत्तिसे ही चीजोंका आनुमानिक निर्माणकाल अवधारित हो सकता है। स्वदेशी एवं विदेशी पण्डितोंने पुरातत्व विषयक पत्रों आदिमें सारनाथमें मिली हुई लिपियोंकी आलोचना और व्याख्या की है। उन आलोचनाओंपर कितने ही विचार तथा कितने ही खण्डन-मण्डन

समय समयपर प्रकाशित हुए हैं। हम अब लिपियोंको कालके अनुसार विभक्तकर यथासम्भव उनकी आलोचना करेंगे।

अशोक लिपि।

सारनाथकी खुदाईसे जो प्राचीन कीर्त्तिके नमूने निकले हैं, उनमें महाराज अशोकका शिलास्तम्भ सभोंकी अपेक्षा अधिक प्राचीन और ऐतिहासिकतामें भी अधिक मूल्यवान् है। इसके शिल्प-सौन्दर्य्यने जगत्को विस्मित कर दिया है। इस स्तम्भके प्रकाशित करनेवाले सारनाथकी खुदाईके प्रधान नायक इंजिनियर एफ़० ओ० अटल महोदय सबकी कृतज्ञताके पात्र हैं। उन्हींके यत्नसे स्तम्भशीर्ष (Lion Capital) सयत्न निकाला जाकर सारनाथके म्युज़ियममें भली भाँति रक्षित है। स्तम्भके नीचेका भाग अब भी प्रधान मन्दिरके पश्चिम द्वारके सम्मुख एक चार खम्भोंपर ठहरी हुई छतके नीचे लोहेसे घिरे हुए जंगलेके बीच वर्तमान है। इसी स्तम्भपर हमारी आलोच्य लिपि प्रकाशित है। इसपर अशोक लिपिको छोड़ और भी दो छोटी छोटी लिपियाँ हैं। एकमें "राजा अश्वघोषके ४० वें संवत्सरकी हेमन्त ऋतुके प्रथम पक्षके दस दिनोंका वर्णन अंकित है। दूसरी दान विषयक लिपि है। ये दोनों लिपियाँ कुशान अक्षरोंमें हैं। इनका सविस्तर वर्णन बादमें दिया जायगा। अशोक लिपिकी प्रथम तीन पंक्तियाँ टूट गयी हैं, किन्तु इसका प्रधान अंश एक रूपसे अच्छी अवस्थामें है। बोयर, सेनार्ट, टामस बोगल और वेनिस आदि माननीय लिपितत्वज्ञोंने इस

लिपिकी विशेष रूपसे आलोचना की है। यदि इनमें कहीं कहीं थोड़ा बहुत भेद भी पाया जाता है तो भी इस लिपिकी व्याख्याको एक रूपसे सब लोगोंने स्वीकार किया है।

यह अनुमान किया जाता है कि यह शासन लिपि तत्कालीन राजधानी पाटलिपुत्र और प्रदेशोंके प्रधान कर्म्मचारियोंके लिए लिखी गयी थी। दुःखका विषय है कि प्रथम तीन पंक्तियां इस तरह विनष्ट हुई हैं कि प्रथम वाक्यका मर्म्म एवं घटना जाननेका कोई उपाय नहीं है। बौद्ध संघमें धर्मके विषयमें कलह करने और संघमें विभाग उत्पन्न करनेका कोई अधिकारी नहीं है, यही अनुशासनकी पहली वात है। दूसरी वात इन सब कलहकारियोंको दंडित करनेकी विधिका निर्धारण है। ऐसे आचरणवाले अपराधियोंको संघसे निकालकर विहारसे वाहर हटा देना होगा। धर्म-कलहके लिए इसी प्रकारका दण्ड विधान बुद्धघोषके बनाये हुए पाटलिपुत्रमें अशोक द्वारा जोड़ी गयी धर्म समितिके वृत्तान्तमें भी लिखा है। साञ्ची एवं प्रयागकी स्तम्भलिपियोंमें भी इसीके अनुरूप अनुशासन देखा जाता है। हम जिस अनुशासन लिपिका विचारकर रहे हैं उसके अन्य भागमें सम्राट्के आज्ञाप्रचार सम्बन्धी नियमों और विषयोंका वर्णन है। भिक्षु और भिक्षुकियोंके संघसमूहमें और जनसाधारणके इकट्ठे होनेवाले स्थानमें यह आज्ञा प्रचारित होनी चाहिये। इसमें राजकर्म्मचारियोंको स्मरण कराया गया है और अनुशासनकी एक प्रतिलिपि उनकी प्रधान समितिमें अंकित करा दी गयी है। उनको यह आज्ञा भी दी जाती है कि वे इस अनुशासनकी एक एक प्रतिलिपि

अपने सीमान्तर्गत स्थानोंमें सर्वत्र भिजवा दें और सेना निवासयुक्त जनपदके अध्यक्षोंको भी इस बातसे सूचित कर दें ।

यह अनुशासन बौद्धधर्म्मके अनुसन्धानकर्ताओंके लिए एक बड़े आदरकी वस्तु है, क्योंकि इससे यह बात सिद्‌ध होती है कि राजा "सद्‌धर्म्म"के प्रचारके लिए (१) विहारसमूहकी समुचित रीतिसे देखभाल करते थे। और भी एक बात इससे प्रकाशित हुई है कि अशोक धर्म्म-कलहकारियोंके साथ कठोर व्यवहार करते थे ऐसा जो प्रवाद प्रचलित था, इसकी सत्यताका अब कोई प्रमाण ढूंढने-की आवश्यकता नहीं । इस लेखपर किसी भी तिथि या संवत्का उल्लेख नहीं है। किसी किसी लेखकके मतसे अशोक जिस समय बौद्‌ध तीर्थोंके दर्शन करते करते सारनाथ आये थे उसी समय इसकी रचना की गयी थी। यदि यह अनुमान सत्य है तो कह सकते हैं कि यह अनुशासन लिपि "तराईके स्तम्भ लेख"की समसामयिक है। किन्तु देखा जाता है कि इसीके अनुरूप जो प्रयागका अशोकानुशासन है, उसका समय उक्त स्तम्भलिपियोंके पीछेका है, अर्थात् अशोकके २७ वें राज्याब्द अथवा ख्रीष्ट पूर्व्व २४३ वर्षके पीछेका है। इसलिए सारनाथकी लिपि भी प्रयागके अनुशासनकी सम-सामयिक कही जा सकती है। (२) पाटलिपुत्रकी धर्म्मस-मितिमें सब विषयोंपर विचार किया गया था उसीका फल-

(१) बौद्धगण अपने धर्म्मको 'सद्‌धर्म्म' कहते हैं। पाली-साहित्यमें कहीं भी बौद्ध धर्म्म' का प्रयोग नहीं किया गया है।

(२) यह मत सुप्रसिद्ध विन्सेन्ट स्मिथका है।
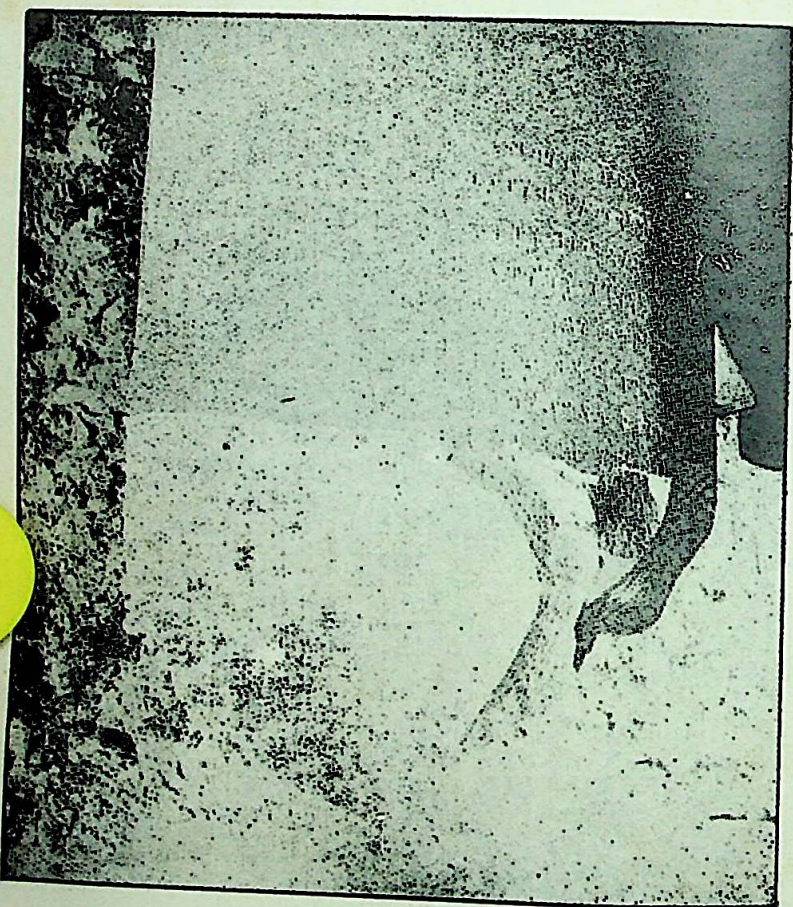
अशोक-लिपि (पृ० १३१)

स्वरूप सम्राट्‌का यह आज्ञापत्र इस अनुशासनमें अंकित हुआ है । पाली साहित्यमें भी इस बातका प्रमाण पाया जाता है ।

ब्राह्मी लिपिमें लिखे हुए लेखकी नागरी अक्षरोंमें प्रतिलिपि ।

पंक्ति

(१) देवा

(२) एल

(३) पाट.........ये केनपि संघे भेतवे ए चुंखो

(४) [भिखू वा भिखुनी वा] संघं भा [खति] से ओदातानि दुस [ा] संनं धापयिया अनावाससि

(५) आवासयिये । हेवं इयं सासने भिखु संघसि च भिखुनि संघसि च विंनपायितविये ॥

(६) हेवं देवानं पिये आहा ॥ हेदिसा च इका लिपी तुफाकंतिकं हुवाति संसलनसि निखिता ॥

(७) इकं च लिपिं हेदिसमेव उपासकानं ति कं निखिपाथ ॥ तेपि च उपासका अनुपोसथं याबु

(८) एतमेव सासनं विस्वं सयितवे ॥ अनुपोसथं च धुवाये इकिके महामातेपोसथाये

(९) याति एतमेव सासनं विस्वंसयितवे आजानितवे च ॥ आवतके च तुफाकं आहाले

(१०) सवत विवासयाथ तुफे एतेन वियंजनेन । हेमेवसवेसु कोट विसवेसु एतेन

(११) वियंजनेन विवासापयाथा ॥ ... (३) ...

(३) J. & proceedings of the A. S. B. Vol III No I

लिपि परिचय—अशोककी अन्यान्य स्तम्भलिपियोंके सदृश यह लिपि भी सुप्राचीन "मौर्य्य" या "ब्राह्मी अक्षरों" में खुदी है। इसमें जितने वर्ण व्यवहारमें लाये गये हैं उनमें कोई विशेष नये नहीं हैं। ब्राह्मी अक्षरका विशेष वर्णन सुविख्यात डाक्टर बुहलरकी बनायी "On the Origin of the Indian Brahmi Alphabet" नामक पुस्तकमें देखा जा सकता है।

भाषा—सारनाथवाली लिपिकी भाषाकी विशेषता खालसी? (काल्सी?) धौलि, जौगड़, रधिया, मथिया, रूपनाथ, बैरात, सासाराम और बराबर गुफाकी लिपियोंकी मागधी भाषाकी विशेषताके सदृश है। उदाहरण स्वरूप, पुंलिङ्ग प्रथमाके एक वचनमें 'ए' कार व्यवहारमें लाया गया है; 'र' के स्थान में 'ल', 'ण' केस्थान में 'न'; एकमात्र 'स' कार का व्यवहार, 'एवं' और 'ईदृश' के स्थानमें यथाक्रमसे 'हेवं' और 'हेदिस' इत्यादिका प्रयोग दृष्टान्त योग्य है।

पहली पंक्ति—देवा [नां प्रिय], लेखोंमें साधारणतः अशोककी यही उपाधि व्यवहारमें लायी गयी है। किन्तु पुराणोंमें सब जगह अशोकका पहला नाम "अशोक वर्द्धन" लिखा पाया जाता है। अशोककी 'काल्सी' पर्वत लिपिकी (Rock Edict VIII) प्रथम पंक्तिसे प्रमाणित होता है कि अशोकके पूर्व पितामहगण भी"देवानांप्रिय"नामसे सम्मानित होते थे। "प्रियदस्सन" उपाधि—"पियदसि" काही रूपान्तर है; यह शब्द सिंहलीय वंशोपाख्यानमें उल्लिखित है। यह शब्द फिर 'मुद्राराक्षस' में चन्द्रगुप्त नामके साथ भी प्रयुक्त हुआ है। इसलिए इसमें कोई संशय नहीं कि सिंहलीय उपाख्यानके

अशोक, पुराणके अशोक और इन खुदे हुए लेखोंके अशोक एक ही हैं। इस विषयपर विस्तृत रूपसे जाननेके लिए सन् १९०१ के J. R. A. S. में प्रकाशित इस सम्बन्धके दोनों लेख देखिये। साञ्ची (माक्षि) के अनुशासनमें अशोक नाम ही व्यवहारमें लाया गया है।

तीसरी पंक्ति---भेतवे-वैदिक तुमुन् प्रत्ययान्त शब्द है। भिद् धातुमें गुण करके उसमें "तु" युक्त होकर एक विशेष्य पद वन गया है। इसका यह सम्प्रदान कारकका रूप है।
भिद् + तु = भेद् + तु = भेत् + तु = भेत्तु

भेतु पदमें ही सम्प्रदानकी विभक्ति संयुक्त हुई है। वैदिक संस्कृतमें यही तुमुन् प्रत्ययान्त शब्द क्रियाके साथ कर्म्म-वाच्य अर्थको प्रगट करता है। पाली भाषामें भी इस प्रकार-के पदोंका अभाव नहीं है "इच्छत्थेसु समान कत्तुकेसु तवे तुम वा" (S. C. Vidyabhusans edition of Kachayan VII. 2. 12) जैसे कातवे, सोतवे। धम्मंपदका ३४ वां श्लोक मिलाइये।

'परिफन्दत्' इदं चित्तं मारधेयं पहातवे
(अपिच) वायसं पि पहेतवे (पोहेतुं) Jataka II. 175.

चुं खो— 'चु' = च + तू (च + तू = च + ऊ = चू) इसके संयोगसे उत्पन्न है।

खो अर्थात् खलु। पालीमें क् खु पदका प्रयोग पाया जाता है। उसे देखनेसे अनुमान होता है कि, खो और क् खु ये दोनों शब्द एक ही प्रथम शब्दसे उत्पन्न होकर उच्चारणकी विभिन्नताके कारण भिन्न २ रूप पा गये हैं।

वह आदिम (प्रथम) शब्द कदाचित् खलु है। खलू > (४) कु खु, अथवा खुलु > खलु > खउ > खो।

कंठ्यवर्ण अथवा संयुक्त व्यञ्जन वर्ण पीछे होनेसे पहिले पदके अन्तिम स्वरके पीछे कभी कभी अनुस्वार हो जाता है। चु + खो = चुखो।

चौथी पंक्ति—भाखति— संस्कृत भक्ष्यति। डाक्टर वोगलने पहिले इस शब्दको 'भिखति' पढ़ा था, फिर डाक्टर वेनिसने इसे 'भाखति' पढ़ा। (J. A. S. B. Voe III No I N. S. page 3)

सं नंधापयिया। सं० सं + नह् + णिच् + ल्यप (cf नध् धातुसे पालि पिनन्ध्यति. नद्धः Latin Nodus)। णिजन्त धातुमें 'प' और स्वरकी वृद्धि अभिन्न नहीं होती।

अनावासंसि—डाक्टर वोगल "आनावाससि" पढ़ते हैं। हमने डाक्टर वेनिसके पाठको अधिक युक्तियुक्त माना है। क्योंकि स्पष्टतः हो देखा गया है कि यह एक पारिभाषिक शब्द है (Sacred book of the East vol XVII P. 388)। साञ्चीकी अशोक लिपिमें भी यह शब्द पाया जाता है। विन्सेन्ट स्मिथने डाक्टर वेनिसके पोठको ही स्वीकृत किया है (Asoka 2nd Edition)

६ ठी पंक्ति—हेदिशा—संस्कृत ईदृशी।

इहा—एका(सं०) > इका। एकार ठीक एकार नहीं है; इहा आकार और इ-कार की मध्यवर्ती अवस्था समझिये।

---

(४) यह साङ्केतिक चिन्ह "to" अर्थमें व्यवहृत किया गया है। बायेंसे दाहिने।

इसलिए सहजहीमें यह एकार ही इकार अथवा अवस्था विशेषसे अकारमें परिणत हो सकता है। 'इका' शब्दतक अशोकको और किसो भो लिपिमें नहीं पाया जाता। हेम-चन्द्रने अपने प्राकृत काव्य 'कुमारचरित' के सातवें अध्यायके बासवें श्लोकमें "इकमनू" एकमनाके अर्थमें प्रयुक्त किया है। इसलिये सारनाथ लिपिके 'इक, 'इकिके' (आठवीं पंक्ति देखो) ये दोनों प्रयोग व्याकरण-निरूपित अपभ्रंश अथवा "भाषा" से विभिन्न होते हुए भो साधाराण भाषाके दो सुन्दर उदाहरण माने जा सकते हैं।

तुफाकं-अनुमान होता है कि यह शब्द पहिले तुष्माकं रूपसे उच्चारित और व्यवहृत होता था। तुष्माकं-तुस्माकं (क्योंकि पालिमें 'ष' नहीं होता) > तुस्वाकं (जैसे मन्मथ > वन्महो), > तुस्पाकं (जैसे लोचेत्वा > लोचेत्पा), > तुस्फाकं (जैसे विष्फुट > विस्फुट,)-तुफाकं (क्योंकि अशोकीय भाषा-में अभ्यस्तवर्णके स्थानमें केवल एकहो वर्णका प्रयोग होता है। वर्गके प्रथम और द्वितीय वर्णके संयोगमें द्वितीय, तृतीय और चतुथ वर्णके संयोगमें चतुर्थ तो वतमान रहता है, प्रथम और द्वितीय लुप्त हो जाते हैं)।

संसलनसि-सं, संसरणंका अथ सङ्गति है। पाली भाषामें इस शब्दका अथ चक्र अथवा संक्रमण हा सकता है। अनु-शासनके अनुसार इस शब्दका अथ 'समागमस्थान' माना जा सकता हैं। जहांतक सम्भव है इस समागम-स्थानसे पाटलिपुत्र अभिप्रेत है।

आठवीं पंक्ति—विस्वं सयितवे—अध्यापक कार्ण और डा. कृर्ण......इस शब्दका संस्कृत "विश्वसयितुम्" शब्द-

के साथ सम्बन्ध बतला कर "अपनेको खूब प्रसिद्ध करना" यह अर्थ किया है।

ध्रुवाये—सं ध्रुवं। अर्थ, अवश्य ही।

इकिके——=इक+इक; इकारके पहले वाले अकार का लोप हो गया है। इसकी तुलना सन्धिशून्य वैदिक 'एक एक' के साथ करनी चाहिये। अथवा इकिक < (५) एकेक < एकैक।

महामाते-सं० महामात्रा (महामात्या)—उर्ध्वतन कर्म्म चारी। तुलनीय-

"मन्त्रे कर्म्मणि भूषायां वित्ते माने परिच्छदे।
मात्रा च महती येषां महामात्रास्तु ते स्मृताः॥"

काश्मीर इत्यादि स्थानोंमें ऐसेही कर्म्मचारीगण धर्म्म-की रक्षाके लिये नियुक्त होते थे।

नवीं पंक्ति—आहाले-सं. आधार—अर्थात् प्रदेश। समा-सवद्ध "साहार" शब्दका (Mahavagga VI. 30, 4) यही अर्थ है।

दसवीं पंक्ति—वियंजनेन—सं. व्यञ्जन। अशोकके तृतीय संख्याके पर्व्वतानुशासनमें डाक्टर ब्युलरने इसका अर्थ ' एक एक अक्षरमें" किया है। डाक्टर वेनिसने भी अर्थ ग्रहण यही किया है। किन्तु डाक्टर वोगलने इसका अर्थ "राजघोषणा" मान कर व्याख्या करने की चेष्टा की है।

कोट—इस शब्द का अर्थ चाणक्यके 'अर्थशास्त्र' के दृष्टान्तके साथ स्पष्ट होते देखा जाता है। "राजा नये

(५) यह सांकेतिक चिन्ह "से" अर्थमें व्यहृत हुआ है। दाहिनेसे बायें:
(६) Epigraphia Indica Vol VIII, Part IV.

नये गांव की प्रतिष्ठा करे; उन गांवोंमें एक सौ से ले पांच सौ तक घर बनवावे......हर एक गांवके चारों ओर एक सौ गज़की दूरीपर लकड़ीसे बने खंभे लगे हुए एक एक किला रहेगा......प्रत्येक आठसौ गांवोंके बीचमें जो किला बनेउ सका नाम "स्थानीय हो" इत्यादि (Indian Antiquarly XXXIV 7

ग्यारहवीं और बारहवीं पंक्तियां—'विवासथाथ' और 'विवास—पयाथा'। अध्यापक कार्णने प्रथम शब्दका अर्थ किया है "पर्य्यवेक्षणाथ चारों ओर घूमना"। यह अर्थ माननेसे मूल शब्दके साथ ठीक सम्बन्ध नहीं रहता। रूपनाथ वाले अशोकके शिलालेखमें "विवसे तवय" शब्द है। डाक्टर वेनिस रूपनाथके शब्दके साथ तुलना कर अनुमान करते हैं कि ये दोनों शब्द दर्शनार्थ "वस" धातुसे निकले हैं। उन्होंने दिखलाया है कि यदि इन दोनों शब्दोंको "वस" धातुसे ही उत्पन्न माना जाय तो रूपनाथ लिपिके "व्यय" और "विवासा" ये दोनों शब्द भी उसी धातुसे निकले माने जा सकते हैं। साथ साथ वह सुविसंवादित संख्या २५६ के जाननेमें भी वड़ी सुविधा हो जाती है। "विवासायाथ" शब्दका अर्थ "दीप्ति" करनेसे साधारणतया "ज्ञापन करेंगे" यह अर्थ अनुशासनके अनुकूल हो जाता है।

भाषान्तर ।

"पाट"........

"देवानां प्रिय"..............

संघ विभक्त नहीं हो सकता। भिक्षू हो अथवा भिक्षुणी हो जो कोई संघ तोड़ेगा वह सफ़ेद कपड़ा पहिनाकर

विहारके वाहर निकाल दिया जायगा। इस भांतिका अनुशासन भिक्षू एवं भिक्षुणी-संघमें विज्ञापित किया जावे।

"देवानां प्रिय" इस प्रकार कहते हैं—ऐसी एक लिपि जन समागम स्थानमें तुम लोगोंके पास रहे यह विचारकर वह लिखी गयी है। ठीक ऐसी ही एक लिपि उपासकोंके निमित्त भी लिखवायगे इस अनुशासनके ऊपर अपने दृढ विश्वास जागृत रखनेके लिए वे प्रत्येक उपवासके दिन आवेंगे। हर एक उपवासके दिन महामात्रगण भी उपवास व्रतके सम्पादन करनेको इच्छासे इस अनुशासनके ऊपर अपने दृढ़ विश्वास जागृत रखनेके लिये और इसका तात्पर्य्य ग्रहण करनेके निमित्त आवेंगे। और तुम लोगोंके अधिकारके सब स्थानोंमें इस अनुशासनका अक्षर अक्षर ज्ञापन करायेंगे। इसी प्रकार दुर्ग युक्त प्रत्येक जनपदमें भी इस अनुशासनको अक्षर अक्षर समझावेंगे।

लेख्य विवरण। प्रधानतः तीन विषयका उल्लेख रहनेसे इसे तीन भागमें विभक्त कर सकते हैं।

प्रथम भागमें मूल शासन अंकित है। यदि कोई भिक्षू वा भिक्षुणी संघविभाग करने की चेष्टा करे तो उसे सफेद कपड़ा पहिनाकर संघ की सीमाके वाहर निकाल देना होगा। यह देश-निकाला धम्मकलहका दण्ड समझा जायगा। इसीके सदृश एक आज्ञा इसी भाषामें प्रयागके किलेके स्तम्भपर (उसमें अंकित) कौशाम्बी अनुशासन" और सांञ्ची अनुशासन में पायी जाती है, (Bulher's papers IA. VolXIX & Epigraphia Indica pp. 366-67) दुःखकी बात है कि इन तीनोंहो लिपियों-का प्रथमांश ऐसा विनष्ट हो गया है कि उस

अंशका किसी रीतिसे अथ नहीं किया जा सकता। यहबात जो अबतक कही जाती है कि अशोकने अपने समयके संघोके लिए अतिकठोर आदेशका प्रचार किया था, उसको यह लिपी सुदृढ़ कर रही है। अशोक सब संघोके नेता थे यह भी इस अनुशासन पत्रसे भली भांति देखा जाता है।

लिपिके दूसरे भागमें सम्राट्के प्रधान कर्म्मचारियोंको उपदेश दिया गया है। उन लोगोंको सूचित किया गया है कि यह एक लिपि तुम लोगोंके लिए ही उत्कोर्ण की गयी है। साधारण जनके लिए भी इसके अनुरूप लिपि उत्कीर्ण करानेके लिए उन लोगोंको आज्ञा दी गयी थी। यह लिपि सारनाथ विहारके भीतर रक्खी गयी थी. क्योंकि इसी लिपिमें यह अंकित है "कि नगरके कर्म्मचारीगण और जन साधारणको प्रत्येक 'उपोसथ' के दिन यहां अवश्य ही जाना होगा।"

लिपिके उद्देश्यका विचार करने हीसे समझमें आता है कि किस कारण धर्म्मकलह-कारी गणको संघच्युत करने और जनसाधारणको उपोसथ दिनका नियम पालन करनेकी आज्ञा मिली थी। उस समय विहारमें धर्म्मबन्धन कुछ शिथिल हो गया था और वास्तवमें किसी किसीको संघसे बाहर निकालना ही पड़ा था। सिंहली साहित्यमें भी इस बातका हाल मिलता है। धर्म्मकीर्तिकी "सद्धर्म्म" संग्रह (Edited in J. P. T. S. for 1890–pp 21–89) नामक पुस्तकमें लिखा है कि परिनिर्व्वाण के २२८ वर्ष पीछे समग्र भारतवर्षमें ६ वर्ष तक समस्त भिक्षुओंने 'उपोसथ' का प्रतिपालन नहीं किया। सम्राट् अशोकने सद्धर्म्मकी ऐसी दुर्दशा

देख सब भिक्षुओंको अशोकाराममें बुलाया था। स्थविर मौद्गलीपुत्र तिष्य इस सम्मेलनके सभापति थे। सम्राटने जांच कर जाना कि उनमें बहुतसे सच्चे भिक्षु नहीं हैं। इससे उन्होंने उन्हें सफेद वस्त्र पहिना संघसे निकाल दिया। इसके पीछे सम्मेलनके सब लोग 'उपोसथ' क्रियाका पालन करने लगे। इसी कारण प्राचीनगणने ऐसा कहा है :-

"संबुद्ध परिनिब्बाना द्वे च वस्स सतानि च ।
अट्ठावीसति वस्सानि राजासोको महीपति ॥"

यह श्लोक 'महावंश' से लिया गया है। और गद्यांश का आधार बुद्धघोषकी "समन्तपसादिका" नामक पुस्तक है। श्वेतवस्त्रकी बात बुद्धघोषके 'सेतकानि वट्ठानि' वाक्यसे भी प्रकाशित होती हैं। लिपिके "ओदातानि दुसानी" वाक्यमें भी यही बात है। लिपिके 'पाट' शब्दसे पाटलिपुत्रके सम्मेलनकी बातका होना सम्भव होता है। 'भाखति' से संघ—भंगकी बात प्रकट होता है। उस समय "सम्मासम्बुद्ध" के धम्म-में जिस रूपसे सङ्कटघड़ी उपस्थित हुई थी, उससे सारनाथ-की लिपि ही बुद्धघोष द्वारा वर्णित अशोकका अनुशासन है, इस कथनमें विचित्रता ही क्या है ?

जिस कारणसे सारनाथकी अधिकांश मूर्तियां टूट गयीं उसी कारणसे अशोकस्तम्भ भी इस टूटी दशाको पहुंचा। आठवीं पंक्तिमें "महामाते" शब्द पाया जाता है। ये लोग "धम्ममहामाता" अर्थात् सद्धम्मकी पूर्णरूपसे रक्षा करने वालोंके अतिरिक्त और कोई नहीं हैं। इन्हींको अशोकने सिंहासनारूढ़ होनेके तेरह वर्ष पीछे नियुक्त किया था। इसलिये सारनाथमें इस स्तम्भके खड़े किये जानेका समय

महामात्योंकी स्थापनाके पूर्वका अर्थात् ईसवी सन्से २५५वर्ष (विक्रम १९८,पहिलेका नहीं हो सकता । इस मतको बहुतसे विद्वानोंने माना है ।

सारनाथमें जितने जंगलेके खम्भे मिले हैं उनमेंसे तीन चारपर दान विषयक लेख हैं । उनके अक्षर ब्राम्ही लिपिके हैं । उनका समय ईसाके पूर्व द्वितीयशताब्दी है,भाषा प्राकृत है

पत्थरकी वेष्टनीके लेख ।

D (a) 13.

प्रथम पंक्ति—* * * निया सोन देवि [ये]

द्वितीय पंक्ति— * * * सवो दान [म्]

भाषानुवाद—यह स्तम्भ सोनदेवीका दान है । पहिले ही कह दिया जा चुका है कि पत्थरकी वेष्टनीका प्रत्येक खम्भा एक एक बौद्ध नर नारी का दान है । पूरा जंगला चन्दा लगाकर बनता था ।

D (a) 14. सं० प्रथम पंक्ति। सीहये साहि जन्तेयिकाये थवो ......

'सोहये साहि" से अनुमान होता है कि यह दान देने वाला पारस देशका रहने वाला था । इस स्थान पर "शाहन शाही" शब्द की भी तुलना करना उचित है । किन्तु दयाराम साहनीने इसका अनुवाद यों किया है ।

"यह स्तम्भ सीहाके साथ जन्तेयिका दान है ।" हम इसे यथार्थ नहीं समझते ।

D (a) 15.—इस खम्भे पर दो लेख हैं । एक तो प्राकृत अक्षरोंमें जो विक्रमसे १५० वर्ष पहिलेका है और दूसरा गुप्ताक्षरोंमें है ।

पहिला—"काये भिखुनि वुसुतरगुताये दानं थ [मो] ।

अनुवाद—"भिक्षुणी वसुधरगुप्ताका दान ।"

दूसरे लेखसे हमें मालूम होता है कि यह खम्भा गुप्त समयमें दीवठके काममें लाया गया था । इसमें दो छोटे छोटे ताख बने हैं और एकके नीचे चार पंक्तिका दान लेख है ।

लेख मूल—[१] देयधर्म्मोयं परमोपा

[२) सिक सुलक्षमणाय मूल

[३] [गन्धकुन्यं भा] गवतो बुद्धस्य

[४] प्रदीपः

हिन्दी अनुवाद—'यह दीप परम भक्त 'सुलक्षमणा' का बुद्ध भगवानके प्रधान मन्दिरपर धार्म्मिक दान है । दूसरे ताख के नीचेका लेख तीन पंक्तियोंका था । परन्तु ऐसा अस्पष्ट हो गया है कि 'प्रदीपः शब्दके अतिरिक्त और कुछ पढ़ा नहीं जा सकता ।

D (a) 16.—पहिले की तरह इसपर भी दो लेख हैं। ये खम्भेके भीतर और बाहर दोनों ओर हैं। बाहरी लेख एक पंक्तिका प्राकृत अक्षरोंमें ईसवी सन् से दो सौ वर्ष पहिलेका है ।

प्रथम—"(भ) रिणिये सहं जंतयिका ये थवो दानं

अनुवाद—भरिणीके साथ जतेयिकाका दान । अभी तक इस बातकी अलोचना किसीने भी नहीं की है कि 'जन्ते-यिक' और 'जतेयिका' एक ही हैं या दो ।

दूसरे लेखकी व्याख्या गुप्त समयके लेखोंके साथ होगी । अशोक लिपिके ठीक नीचे कुशानाक्षरोंकी एक छोटी लिपि दिखलायी पड़ती है । :—

राजाअश्वघोषकी लिपि ।

"……परिगेथूहे रज्ञ अश्वघोषस्य चतरिशे सवछरे हेमत पखे प्रथमे दिवसे दसमे……"

अनुवाद। राजा अश्वघोषके चालीसवें वर्षमें हेमंतके प्रथम पक्षके, दसवें दिन।

सबके पहिले डाक्टर वोगलने इसका पाठ और अनुवाद किया। (७) उनके पीछे डाक्टर वेनिसने इस लिपिके छूटे हुए अक्षरोंको पढ़ इसका सारांश पूरा किया। (८) डाक्टर वोगल कहते हैं कि लिपिमें अनुस्वारका परिवर्त्तन हुआ और राज्ञा का 'आ' और 'चतारि' का 'आ' नहीं दिखलायी पड़ता। अब यह प्रश्न उठता है कि यह अश्वघोष कौन अश्वघोष हैं। सुविख्यात "बुद्ध चरित" के प्रणेता अश्वघोषको राजाकी उपाधि होना कहीं भी सुना नहीं जाता। इसलिए, जैसा कि हमने द्वितीय अध्यायमें दिखलाया है, यह अश्वघोष कोई शकवंशीय राजा थे और यह वाराणसी किसी समय उनके राज्याधीन थी। लिपिका अक्षर कुशान जातीय है और इसकी भाषा भी प्राकृत है। लिपिमें जो समय लिखा हुआ है, डाक्टर [वो]गलके मतसे वह कनिष्कके संवत्का है। किन्तु हम यह समझते हैं कि ये कनिष्कसे भी पहिले हो चुके हैं, क्योंकि इस लिपिके अक्षर मथुराके शाक क्षत्रपगणकी लिपि-के अक्षरोंके समान हैं। इसी राजा अश्वघोषकी एक छोटी सी लिपि सारनाथ ही में मिली थी जिसके अक्षर भी इसीके सदृश हैं। लेख यह है:—

(१) राज्ञो अश्वघोष (स्य)

(२) [उपल] हे [म] [न्तपखे]

---

(७) Epigraphia Indica Vol VIII Page 171,

(८) Journal of the Royal Asiatic society 1912. page 7021—707.

किन्तु इसमें "राज्ञो" का आकार दिखलायी पड़ता है। अतः डाक्टर वोगलका कथन असंपूर्ण मालूम होता है। गुप्त समयी लेखका वर्णन उनके राज्यकालके लेखोंके साथ किया जायगा।

महाराजा कनिष्कके समयके लेख

सारनाथके म्युज़ियममें जो लाल पत्थरकी बोधिसत्वकी एक विशाल मूर्ति सुरक्षित है उसके पैरके नीचेकी चौकीके सामने वाले भागपैर. मूर्तिके पीछे की ओर और, इस मूर्तिके छातेके खम्भेपर भी ऐसे कुल तीन कुशानकालीन लेख वर्त्तमान हैं। ये तीनों लेख महाराजा कनिष्कके राज्यकालके तीसरे वर्षके हैं। डाकृर वोगलने इन्हें पढ़ा और इनका विस्तारपूर्व्वक वर्णन किया है। (९) इन लिपियोंमें से प्रधान लेखके ऐतिहासिक तथ्यका वर्णन हमने द्वितीय अध्यायमें किया है। जिस मूर्तिकी चौकीपर यह खुदा हुआ है, ठीक ऐसी ही एक मूर्त्ति जनरल कनिंघमको प्राचीन स्रावस्ती नगरमें संवत् १९१९ (सन १८६२) में मिली थी। (१०) इसकी चौकीपर तीन पंक्तियोंका एक लेख है। इस लिपिकी आलोचना स्वर्गीय राजेन्द्रलाल मित्र, अध्यापक डाउसन और डाकृर ब्लाकने अनेक पत्रिकाओंमें की थी। (११) सारनाथकी

(९) Vogel, Epigraphia Indica., Vol VIII, pp-173-181.

(१०) Arch: Survey Report. I. p. 339. V p. vii and XI p. 86, Dr-Anderson's Cat: of the I. Museum Vol I. p. 194.

(११ Dr: R. L. Mitra, J. A. S. B. Vol XXXIX Part I p. 130; Prof: Dowson, J R. A. S. new series Vol: V p. 192; Dr. T. Block, in J.A.S.B. 1898, p. 274. R. D. Banerji in Sahitya Parishat Patrika १३१२ साल, १७०-१७ पृष्ठ।"

इस लिपिके निकलनेके बाद ऊपरवाली लिपिको अनेक अस्पष्टताएं दूर की गयी हैं।

छत्र दंडपरका लेखः—

(१) महारजस्य कणिष्कस्य सं ३ हे ३ दि २२
(२) एतये पूर्व्वये भिक्षुस्य पुष्यवुद्धिस्य सद्धेवि
(३) हारिस्य भिक्षुस्य वलस्य त्रैपिटकस्य
(४) बोधिसत्वो छत्रयष्टि च प्रतिष्ठापितो
(५) वाराणसिये भगवतो चंक्रमे सहा मात [ा]
(६) पितिहि सहा उपध्याया चेरेहि सध्ये विहारि
(७) हि अन्तेवासिकेहि च सहा बुद्धमित्रये त्रेपिटक
(८) ये सहा क्षत्रपेन वनस्परेण खर पल्ला
(९) नेन च सहा च च [तु] हि परिषाहि सर्वसत्वनम्
(१०) हितसुखात्थं ।

हिन्दी अनुवादः—महाराज कनिष्कके तीसरे संवत्के, हेमंतके तीसरे महीनेके बाइसवें दिनमें, त्रैपिटक और भिक्षु पुष्पबुद्धिके साथी भिक्षूबलका (दान), बोधिसत्व (मूर्त्ति), छत्र और छत्रदंड, सबके सुख और हितके निमित्त उनके जनक जननीकी उपाध्यायाचार्यगणकी, साथके शिष्योंकी, त्रैपिटक बुद्धमित्रकी और क्षत्रप वनस्पर एवं खरपल्लानकी, सहायता-से वाराणसीमें भगवान् (बुद्ध) के चंक्रमण स्थानपर प्रति-ष्ठापित हुई थी ।

स्रावस्तीके लेखमें पुष्पबुद्धि और भिक्षबलके नाम तो हैं, पर दोनों क्षत्रपोंके नाम नहीं हैं। उस लेखमें भी मूल बात भिक्षू बलद्वारा बोधिसत्व मूर्तिकी एवं छत्र और छत्रदंडकी प्रतिष्ठा ही है। सारनाथकी और दो लिपियोंका तात्पर्य यह हैः—

(क) (१) भिन्नुस्य वलस्य त्रैपिटकस्य बोधिसत्त्वो प्रतिष्ठापितो (सहा)
(२) महाक्षत्रपेन खरपल्लानेन सहाक्षत्रपेन वनष्परेन्
(ख) (१) महाराजस्य कनि (ष्कस्य) सं ३, हे ३, दि २ [२]
(२) एतये पूर्वये भिन्नुस्य वलस्य त्रैपिट [कस्य]
(३) बोधिसत्त्वो छत्रयष्टि च [प्रतिष्ठापितो]

मन्तव्य। यह लिपि कनिष्कके नाम-युक्त निदर्शनोंमें सबसे पुरानी है। इसमें खरपल्लान और वनस्परके साथ अनेक तथ्य संयुक्त है। छत्र दंडके लेखानुसार इन दोनों व्यक्तियोंने दानके विषयमें सहायता दी थी और वनस्पर 'क्षत्रप' उपाधिसे भूषित थे। मूर्त्तिके लेखमें खरपल्लानको 'महाक्षत्रप' कहा है। डाकृर वोगल अनुमान करते हैं कि इन दोनोंने इस मूर्त्तिके बनवाने इत्यादिमें धनसे सहायता-की थी और कार्य्यका प्रवन्ध भिक्षुवलके हाथमें था। यद्यपि इस विषयमें मतभेद है कि सारनाथ और स्रावस्ती-की मूर्त्ति के शिल्पी एक हैं या नहीं, तो भी इन दोनों मूर्त्ति-योंके दाता भिक्षुबल ही थे इसमें कोई सन्देह नहीं। सम्भ-वतः दोनों क्षत्रप बौद्ध थे और महाराजा कनिष्कके अधीन शासक थे। विक्रमसे पूर्व प्रथम शताब्दीमें प्रतिष्ठित शक राजाओंके साथ इनका सम्बन्ध प्रमाण द्वारा स्थापित होता है। यह भी हो सकता है कि महाक्षत्रप वनस्परको कनि-ष्कके प्राच्यभूभागके शासन करनेका अधिकार प्राप्त था।

कुशान युगकी और एक लिपि पत्थरके छातेपर खुदी है और उसका भी उल्लेख करना आवश्यक है।

पाली लिपि

यह ईसवी द्वितीय अथवा तृतीय शता-ब्दीकी है।

मूललिपिः—(१) चत्तार-ईमानि भिखवे अ [रि] रय-सच्चानि

(२) कतमानि [च] त्तारि दुक्खं [ं] दि [भि] क्खवे अरा [रि] य सच्चं

(३) दुक्ख समुदयो अरियय [स] च्चं दुक्ख निरोधो अरिय सच्चं

(४) दुक्ख निरोधगामिनी [च] पटिपदा अरि [य] सच्चं (१२)

भाषान्तर। हे भिक्षुगण! यही चार आर्य्य सत्य हैं। कौन चार? हे भिक्षुगण! दुःख आर्य्य सत्य है, दुःखकी उत्पत्ति आर्य्य सत्य है, दुःख-निरोध आर्य्य सत्य है, दुःख निरोधगामिनी गति भी आर्य्य सत्य है।

मन्तव्य। स्पष्ट ही इस लिपिमें उस उपदेशका सारांश अंकित है जो प्राचीन प्रवादानुसार बुद्ध भगवान्ने वाराणसी-में दिया था,। (१३) ऐसी लिपिका मिलना सारनाथमें ही सम्भव है, क्योंकि इसके साथ सारनाथकी प्रधान घट-नाका सम्बन्ध सुविदित है। इस लिपिके सम्बन्धमें और भी एक विषय जानने योग्य है। इस लिपिकी भाषा पाली है। यही भाषा एक दिन बौद्धधर्मके हीनयान सम्प्रदायमें धर्मोपदेशकी भाषा थी। फिर देखा जाता है कि इस लिपिके परवर्ती समयमें उत्तर भारतमें पाली भाषाका और कोई अनुशासन अबतक नहीं मिलता है। इसलिए यह प्रमाणित होता है कि कुशानयुग तक वाराणसीमें पालि भाषा द्वारा ही उपदेश देनेकी चलन थी। संवत् १९६२ के खनन कार्य्यसे जो २५ शिलालिपियां मिली हैं, यह

(१२) Sarnath Catalogue no; D. (c) II.

(१३) महावग्गके प्रथम अध्यायमें भी यह उपदेश पाया जाता है।

लिपि उनमेंसे एक है। और अन्य सब लिपियोंमें अधिकांश 'ये धर्महेतु प्रभवा" इत्यादि मन्त्र ही (१४) बार बार दुहराये गये हैं।

गुप्तसमयके लेख

पहले ही कहा जा चुका है कि गुप्त राजा स्वयं हिन्दू धर्म्मावलम्बी होते हुए भी बौद्धधर्म्मावलम्बियोंके प्रति दया भाव रखते थे। इसी कारण इस बौद्ध केन्द्र सारनाथमें उनके राज्यकालमें अनेक बौद्ध सम्प्रदायकोंका अस्तित्व था। शिलालिपि और अन्य प्रमाणोंसे इन सम्प्रदायोंका परिचय मिलता है। ऐसे दो सम्प्रदायकोंकी दो लिपियां मिली हैं। एक तो चिरविख्यात अशोक स्तम्भपर अंकित है और दूसरी "प्रधान मन्दिर" के दक्षिणवाली कोठरीमें प्राप्त वेष्टनी (रेलिंग) पर खुदी है। (१५)

प्रथम लेखः—

मूल। "आ (चा) र्य्यनम् स (म्मि) तियानां परिग्रह वात्सीपुत्रिकानां।

अनुवाद वात्सीपुत्रिक सम्प्रदायके अन्तर्गत सम्मितिय शाखाके आचार्य्यों का उत्सर्ग।

दूसरा लेखः—

मूल (१) आचार्य्यनं सर्वास्तिवा

(२) दिनं परिग्राहे

अनुवाद। सर्व्वास्तिवादि सम्प्रदायके आचार्य्योंका उत्संग।

मन्तव्य। इन दोनों लिपियोंमें 'न' कार इत्यादि अक्षरोंको

---

(१४) A. S. R. for 1906-7 plate XXX.

(१५) Annual Report 1904-5 p. 68. Ibid. 1907-8 p. 73.

देख इनका गुप्त-कालीन होना स्थिर किया जाता है। डाकृर वोगल पहिली लिपिकी आलोचना कर उसे चौथी शताब्दी-की होनेका अनुमान करते हैं। (१६) यह अनुमान ठीक जान पड़ता है क्योंकि फाहियान इस सम्प्रदायका कर्त्तृत्व देख गया है। सम्भवतः सम्मितिय-गण चौथी शताब्दीके मध्य भागसे ही सारनाथमें प्रतिष्ठा पा चुके थे। सम्मितिय शाखा वात्सीपुत्रिक बौद्ध सम्प्रदायके अन्तर्गत है। यह बात तिब्बतके पुराणोंमें भी पायी जाती है। दूसरी लिपिसे सर्व्वास्तिवादियोंके प्राधान्यका परिचय मिलता है। यह लिपि पहिली लिपिसे पीछे की है। पहिलेके लेखको खुरच कर उसके ऊपर यह संस्कृतमें अंकित है। सम्भव है कि सर्व्वास्तिवादि सम्प्रदायने अपनी श्रेष्ठता स्थापन करनेके उद्देश्य से किसी प्राचीनतर सम्प्रदायके उल्लेखके स्थानपर अपना नाम ही अंकित कर दिया है। उस प्राचीनतर सम्प्रदायका पता अभी तक नहीं लगा। सम्मितियोंके सदृश सर्व्वास्तिवादिगण भी स्थविरवादकी एक शाखा हैं और वे हीनयान मतावलम्बी हैं। अनेक प्रमाणों-से जाना गया है कि सारनाथमें उन्हें खीष्टीय प्रथम शता-ब्दीमें प्रधानता मिली थी। (१७) सुतरां सम्मितियगण

---

(१६) Epi: Indica Vol. VIII No. 17 page 172.

(१७) Epigraphia Indica Vol: IX, P. 272; सन् १९०७-८ ईस्वीमें खोदाई करते समय जगतसिंह स्तूपके निकट एक लिपि मिली थी जिससे कि सर्व्वास्तिवादियोंका परिचय मिलता है। A. S. R. 1907-8 p. XXI

अवश्य ही इनकी शक्तिका लोप होनेपर ही सारनाथमें प्रवल हुए। फिर इ-चिङ्गकी बातसे भी मालूम होता है कि प्रथम शताब्दीके मध्यभागमें सर्वास्तिवादि सम्प्रदाय प्रवल हुआ।

D (a) 16. इसपरके एक लेखका वर्णन पहिले हो चुका है। अब दूसरे लेखका वर्णन इस प्रकार है:—

दीपकस्तम्भपरकी दानका—उल्लेख—करनेवाली एक लिपि संवत् १९६१-६३ (सन् १९०४-०६) के खनन कार्य्यसे प्राप्त हुई है। अक्षरोंके अनुसार इसका चतुर्थ या पञ्चम शताब्दी ईसवीका होना स्थिर किया गया है।

मूल—देयधर्म्मेर्=यं परमोपा

[स] क-कीर्त्तेः [मूल-ग] न्धकु

[ट्यां] [प्र] दी [प......दद्वः]

तात्पर्य्य—कीर्त्ति नामक परम उपासकका पवित्र दान, यह प्रदीप मूलगन्ध कुटीमें स्थापित हुआ।

मन्तव्य। सारनाथमें इस प्रकारके और भी बहुत दीपक स्तम्भ पाये गये हैं। इस लिपिके अधिकांश अक्षर नष्ट हो गये हैं। टूटे हुये एक स्थानकी पूर्ति करनेके निमित्त डाक्टर वोगल ने " गन्ध कुट्यां " पाठ ग्रहण किया है। इस भांति पढ़नेके अनेक प्रमाण भी वर्तमान हैं। इसी सारनाथमें मिली हुई मिट्टीकी मोहरों (seal) में भी यह सूत्र पाया जाता है। इन सब मोहरोंमें साधारण रूपसे चक्र, मृग चिन्ह, और नीचे लिखी लिपियाँ भी पायी जाती हैं। सारनाथकी तालिकामें इसका नम्बर F (d) 5 है।

मूल पाठ। (१) श्री सद्धर्म्मचक्रे मू

(२) ल—गन्धकुट्यां भग

(३) वतः

अनुवाद। श्री सद्धर्म्म चक्रमें भगवानकी मूल गन्धकुटीमें।

मन्तव्य। लिपिके अक्षर छठवीं अथवा सातवीं शताब्दीकी वर्णमालाका परिचय प्रदान करते हैं। इससे भी स्पष्ट जाना जाता है कि एक समय सारनाथका नाम "सद्धर्म्म-विहार" था। यह नाम गोविन्द चन्द्रके समय तक चलता था, यह उनके लेखसे जाना जाता है। यह नाम "धर्म्मचक्र-प्रवर्त्तन" के नामको भी सुदृढ़ करता है, इसमें कोई सन्देह नहीं। "मलगन्ध कुटी" के अवस्थित स्थानके सम्बन्धमें इतिहासज्ञोंके बीच अनेक विवाद चल रहे हैं। हम 'हुयेङ्ग-साङ्ग' वर्णित बुद्धमूर्त्ति प्रतिष्ठित स्थानको ही "मूलगन्ध कुटी" कहना चाहते हैं। (१८) इस विषयकी विशेष आलोचना परिशिष्टमें की गयी है। गन्धकुटी नामका अनुवाद "सुगन्ध परिपूर्ण कक्ष" को छोड़ और कुछ नहीं कर सकते। बुद्ध भगवान जिस स्थानपर रहते थे वहां अवश्य ही प्रतिदिन सुवासित धूप, गुग्गुल इत्यादि जलाया जाता था और सुगन्धयुक्त फल इत्यादि लाये जाते थे। संभव है इसी प्रकार इस नामकी उत्पत्ति हुई हो। 'मूल' इस विशेषण पदके प्रयोगसे अनुमान होता है कि यहांपर और भी बहुत गन्ध कुटियां थीं।

इसे छोड़ मूर्तिकी चौकियोंपर गुप्तयुगकी बहुतसी

---

(१८) जिसे हम आज प्रधान मन्दिर "Main shrine" कहते हैं। यह गन्धकुटीके नष्ट हो जानेपर पालयुग में बनी थी।

छोटी छोटी लिपियां हैं। कुमारगुप्तकी लिपिके विषयमें पहिले कह दिया गया है। कुमारगुप्तकी नयी मिली हुई लिपि अब तक सर्व साधारणके लिए प्रकाशित न होनेके कारण इस स्थानपर भी आलोचित नहीं हो सकी। सारनाथमें मिली हुई हरिगुप्तकी दान-विषयक लिपि और गुप्त वंशीय नरपति प्रकटादित्यकी टूटी हुई लिपि डाक्टर फ्लीटके "Gupta Inscriptions" नामक पुस्तकमें है। अनावश्यक समझ वह यहां नहीं दी गयी।

प्राचीन बंगला अक्षरों-के लेख ।

गुप्त राजाओंके पीछे किसी किसी पाल राजाओंने भी सारनाथमें अपना प्रभाव फैलाया। इस विषयके प्रमाण स्वरूप हम उनके दो लेख सारनाथमें देखते हैं। कालक्रमके अनुसार पहिला लेख यह है—सारनाथकी तालिका में इसका नम्बर D. (f) 59 है।

मूल पाठ । "विश्वपालः ॥ दश चैत्यां‘स्तु यत् पुण्यं
करयित्वार्ज्जितत् मया (।) सर्व्वलोको भवे ।
[त्तेन] सर्व्वज्ञः कारुण्यमयः ॥ श्रीजयपाल
एतानुद्दिश्य कारितमामृत पाले [न] ।

भाषान्तर । विश्वपाल ॥ दश चैत्य बनवाकर हमारा जो पुण्य सञ्चय हुआ है वह त्रिलोकको सर्व्वज्ञ और कारुण्यपूर्ण करे। श्री जयपाल......अमृतपाल द्वारा किया गया।

मन्तव्य । पीछे वाले अंशके साथ विश्वपाल नामका कोई सम्बन्ध नहीं है। 'जयपाल' शब्दके पीछे एक और शब्द था जो नहीं दिखलायी पड़ता। ऐसा प्रतीत होता है कि जयपाल पालवंशीय इतिहास प्रसिद्ध प्रथम विग्रहपालके

पिता थे । जयपालके पिता वाक्पाल राजा धर्म्मपालके छोटे भाई थे । उनका संवत् ६१८ (सन् ८६१) है । अक्षर देखनेसे भी यह लिपि नवीं शताब्दीकी प्रतीत होती है ।

दूसरा लेख । इसका नम्बर सारनाथकी तालिकामें B (c) 1 है ।

मूल पाठः (१) ओं नमो बुद्धाय ॥

वारान (ण) शी (सी) सरस्यां गुरव श्री वामराशिपादाब्जं

आराध्य नमितभूपति शिरोरूहैः शैवलाधीशं

इ [ई] शानचित्रघण्टादि कीर्तिरत्नशतानि यौ

गौडाधिपो महीपालः काश्यां श्रीमानकार [यत्]

(२) सफलीकृतपाण्डित्यौ बोधावविनिवर्त्तिनौ ।

तौ धर्म्मराजिकां साङ्गं धर्म्मचक्रं पुनर्नवं ॥

कृतवन्तौ च नवीनामष्टमहास्थानशैलगन्धकुटीं

एतां श्रीस्थिरपालो वसन्त पालो ऽनुजः श्रीमान् ॥

(३) संवत् १०८३ पौष दिने ११.

(४) ये धर्म्मा हेतुप्रभवा हेतुं तेषां तथागतोह्यवदत्

(५) तेषाञ्च यो निरोध एवं वादी महाश्रमणः ।

भाषानुवाद । काशीरूपी सरोवरमें, चरणोंपर झुककर प्रणाम करनेवाले राजाओंके मस्तकोंके केश-कलापके स्पर्शसे जो इस प्रकार शोभित होते थे मानो शैवाल (सिवार) से घिरे (कमल) हों, श्रीवामराशि नामक गुरुदेवके उन्हीं चरणरूपी कमलोंकी आराधना करके गौड़-देशके राजाने जिनके द्वारा ईशान-चित्र घण्टादि सैकड़ों कीर्त्तिरत्न बनवाये थे, उन (स्थिरपाल और वसन्त पाल) की चतुरता आज

सफल हुई—वे सम्बोधि-पथसे नहीं लौटे। उन्हीं श्रीमान् स्थिरपाल एवं उनके छोटे भाई श्रीमान् बसन्तपालने "धर्मराजिका" का एवं "सांग धर्मचक्र" का पुनःसंस्कार कराया एवं आठों बड़े बड़े स्थानोंके पत्थरोंसे बनायी गयी गन्धकुटीको फिरसे बनवा दिया। जो धर्म 'हेतु' से उत्पन्न हुए हैं, उनका 'हेतु' क्या हो सकता है, तथागत (बुद्धदेव) ऐसा कहते हैं।

संवत् १०८३ पौषकी एकादशी। (१६)

कर्णदेवकी प्रशस्ति। महीपालके लेखके पीछे कालक्रमानुसार चेदिवंशीय राजा कर्णदेवका लेख सारनाथ म्युज़ियममें सुरक्षित है। इसका नम्बर सारनाथ तालिकामें D (1) 8 है इस प्रशस्तिके कई टुकड़े हो गये हैं। कई टुकड़ोंको इकट्ठाकर श्री 'हुल्श' (Hultzsch) ने इसे पढ़ा है। प्रशस्तिके अक्षर

(१९) यह लिपि पाँच बार प्रकाशित और कितने ही बार अनेक पत्रिकाओंमें भी आलोचित हुई है। सबसे पीछे इसका बंगलानुवाद श्रीयुक्त अक्षयकुमार मैत्रने किया है। "गौड़ लेखमाला" पृ १०४-१०९। इसकी विशेष आलोचनाके लिये परिशिष्ट और निम्न लिखित प्रबंध देखिये।

Asiatic Research Vol. V. p. 131 and Vol X (1808) pp. 129-133. A S. R. vol III p. 114. and vol XI p. 182. Hultzsch 23 ch. Ind. ant, Vol XVI p. 139 sq. A. S. R. 1903-4 p. 221. J. A. S. B. (new series) Vol II No 9p. 447. I. A. XIV, 139, J. A. S. B. VXI 77; Bendall cat. Buddha skt. Mss. Int II P. 100.

प्राचीन नागरीके हैं, भाषा टूटी फूटी संस्कृत है। त्रिपुरीके चेदिवंशीय कर्णदेवने ८१० कलचुरि संवत् अथवा संवत् १११५ (सन् १०५८) में यह लेख लिखाया था। उस समय "सद्धर्मचक्र प्रवर्तन" महाविहारमें कुछ स्थविरोंको आशीर्वचन कहे गये थे। इस लेखमें यह भी जाना जाता है कि महायान-मतावलम्बी धनेश्वरकी पत्नी मामकाने अष्टसाहास्त्रिका (प्रज्ञापारमिता) की प्रतिलिपि करायी थी और भिक्षु सम्प्रदायको कोई पदार्थ दान दिया था।

कुमरदेविकी प्रशस्ति।

यह शिलालेख सरजान मार्शलके खोदाईके कामसे संवत् १९६५(सन् १९०८ में धमेकस्तूपके पास से मिला था। इसमें २६ श्लोक हैं। इसका पाठादि स्पष्ट रूपसे प्रकाशित हुआ है। (२०) विस्तार भयसे पाठादि इस स्थानपर न देकर हम केवल लिपिका सारांश देते हैं। इस लिपिकी भाषा सुललित संस्कृत और अक्षर प्राचीन नागरीके हैं। इसका विषय इतिहास--प्रसिद्ध कान्यकुब्जके राजा श्री गोविन्दचन्द्र की रानी द्वारा "सद्धर्मचक्रविहार" (सारनाथ)में एक विहारका बनना है। श्री गोविन्दचन्द्रके और और लेखोंके साथ तुलना कर इस लिपिका समय विक्रम बारहवीं शताब्दीका द्वितीय भाग स्थिर किया जाता है। इसमें वसुंधरा और चन्द्रमाको नमस्कार करनेके पीछे गोविन्दचन्द्र और उनकी रानी कुमरदेवीकी वंशावली अंकित है। दुष्ट तुर्क सेनासे वाराणसीकी रक्षा करनेके लिए गोविन्दचन्द्रने विष्णुके अवतार रूपसे

(20) Epic Indica. Vol IX p. p. 319 ,JJ. cotalogue no D (1) 9.

जन्म लिया था। कुमरदेवी और शंकरदेवीको देवरक्षित-की कन्या कहा गया है। शङ्करदेवीके पिता महन वा मथन गौड़नृपति रामपालके मामा लगते थे। इसलिए कुमरदेवी मथनदेवकी नतिनी हुईं। प्रशस्तिके २१ वें श्लोकमें लिखा है कि कुमरदेवीने धम्मंचक्र (सारनाथ)में एक विहार बनवाया। २२ वें और २३ वें श्लोकमें लिखा है कि उन्होंने श्री धर्म्म चक्र जिनके उपदेश सम्बन्धी एक ताम्रपत्रको तैयार करवा कर पट्टल्लिकाओंमें श्रेष्ठ "जम्बुकी"को दान दिया था और फिर उन्होंने धर्म्माशोकके समयकी श्री धर्म्मचक्रजिन मूर्तिको फिरसे बनवाया। इसके पीछे फिर विहार बनवानेकी बात इस लेखमें है। संक्षेपमें ये ही बातें इस लेखमें पायी जाती हैं—(क) कुमरदेवी और गोविन्दचन्द्रकी वंशावली, (ख) सारनाथमें धर्म्मचक्रजिन नामसे परिचित बुद्ध भगवानकी एक अति प्राचीन मूर्त्ति थी, (ग) उस मूर्त्तिका मन्दिर "धर्म्म-चक्रजिन विहार" के नामसे विख्यात था। यह सम्भवतः एक गन्धकुटी ही थी। (घ) उल्लेखित ताम्रपत्रमें कदाचित् भगवान बुद्धका वाराणसीमें दिया हुआ उपदेश लिखा था अथवा उसी उपदेशके अनुसार यह लिखा गया था। जो हो, उस कौतूहलपूर्ण ताम्रपत्रका पता आज तक न लगा।

अकबर बादशाह-का लेख।

मुग़ल सम्राट हुमायूं एक बार सारनाथमें आये थे। उनके मर जानेपर संवत् १६४५ (सन् १५८८) में इस घटनाको स्मरणीय करनेके उद्देश्यसे अकबर बादशाहने एक शिलालेख सारनाथमें स्थापित किया। उसकी भाषा फारसी (Persian) है। अनुवाद यह है—"सातों देशके भूपाल,

स्वर्गवासी हुमायूं एक दिन इस स्थानपर आकर बैठे थे और इस प्रकार उन्होंने सूर्य्यके प्रकाशकी वृद्धि की थी। इसीसे उनके पुत्र और दीन नौकर—अकबरने आकाश छूनेवाला एक ऊंचा स्थान बनवानेका संकल्प किया था। ९९६ हिज्रोमें यह सुन्दर भवन बना"। इस भवनको ही वर्तमान समयमें "चौखंडी" स्तूपके ऊपर हम देखते हैं। इसीपर उक्त लिपि भी वर्तमान है।

सप्तम अध्याय ।

सारनथाकी वर्तमान अवस्था ।

हम इस अध्यायमें सारनाथ देखनेवालोंकी सुविधाके निमित्त प्रधान प्रधान खंडहरोंका वर्णन करेंगे । सारनाथमें यात्री किस किस स्थानको किस किस भांति देखेंगे, इसीका आभास करा देना इस अध्यायका उद्देश्य है । साथ ही साथ मुख्य स्थानोंके ऐतिहासिक तथ्य भी जाने जायंगे ।

बनारस शहरसे सारनाथ पहुंचनेके दो मार्ग हैं । एक छोटी लैनसे और दूसरा पक्की सड़कसे ।

सारनाथका रास्ता । रेलसे जानेमें सारथान नामक स्टेशनपर उतर वहांसे प्रायः एक मील पैदल जाना पड़ता है । परन्तु सुविधाके लिए एक्का गाड़ी या घोड़ा गाड़ीमें चढ़कर एकदम सारनाथ पहुंच सकते हैं । गाड़ीमें चढ़ क्वीन्स कालेजके बगलसे होते हुए बरना नदीका पुल पार करनेके उपरान्त पिसनहरियाकी चौमुहानी पहुंच वहांसे दाहिने हाथ अर्थात् पूरबकी ओर चलना चाहिए । इस छायादार पेड़ोंके बीचकी सड़कसे पहड़ियाका पोखरा दाहिने हाथ छोड़ते हुए दर्शक दूर दूर आमके लगे वृक्षोंकी श्रेणी देखेंगे । इन्हें देख पूर्व्वकालके "मृगदाव" की बातका स्मरण हो आता है । फिर कुछ दूर चलकर छोटी लैनकी सड़क पार करनेसे पहिले ही इस मार्गको छोड़कर

उत्तरकी ओर अर्थात् बायें हाथवाली सड़कपर चलना चाहिए। इस सड़कपर थोड़ी दूर चलनेपर आप अपनी बायीं ओर एक सुवृहत् " चौखंडी " नामक स्तूप देखेंगे।

इस स्तूपका निचला भाग देखनेसे वह एक मिट्टीके टीले-के सिवाय और कुछ नहीं कहा जा सकता।

चौखंडी स्तूप। इसके ऊपरी भागपर ईंटोंसे बना हुआ एक अठकोन घर वर्तमान है। इसका प्रचलित नाम " चौखंडी " किस तरह पड़ा, यह नहीं कहा जा सकता, क्योंकि यह अठकोन घर थोड़े ही समय-का बना है। अकबर बादशाहने संवत् १६४५ (सन् १५८८) में अपने पिता हुमायूं बादशाहके सारनाथमें आनेकी बात-को बहुत समय तक स्मरण करानेके लिए यह घर बनवाया था। इसी मर्मकी एक फारसी लिपि भी इसमें लिखी है जिसका वर्णन गत अध्यायमें कर चुके हैं। चौखंडीका निचला भाग बहुत पुराना (बौद्ध कालका) है। संवत् १८९२ (सन् १८३५ ईसवीमें) कनिंघम साहेबने अष्टकोन घरके नीचे एक कुआं खुदवाया और जब उन्होंने उसमेंसे कोई भी वस्तु उल्लेख करने योग्य न पायी तब वे इस सिद्धान्तपर पहुंचे कि यह हुएन-संग वर्णित एक स्तूप मात्र है। इसी स्थानके समीप बुद्ध भगवान् अपने पहिले पांचों चेलोंसे मिले थे। इस सिद्धान्तसे सर जान मार्शल भी सहमत हैं। संवत् १९६२ (सन् १९०५ ई०) में सारनाथके नये अन्वेषक श्री अर्टलने इसके उत्तरकी ओर खुदवाया। उन्हें प्राचीन समयके बहुतसे शिल्पीय नमूने आदि मिले। अर्टल साहेबके मतसे यह स्तूप २०० फुट ऊंचा था। किन्तु इसकी

वर्तमान ऊंचाई अठ्कोन घरको मिलाकर केवल ८२ फुट है। इसकी चोटीपर चढ़कर चारोंओर देखनेसे बहुत दूरतकका दृश्य दिखलायी पड़ता है। उत्तरकी ओर "धामेक स्तूप", दक्षिणकी ओर बहुत दूरपर "वेणीमाधवका झण्डा" इत्यादि भली भांति दिखलायी पड़ता है।

सारनाथका निखात-स्थान

चौखंडीके प्रायः आध मील चलनेपर ठीक सारनाथके बड़े भारी स्तूपके पास पहुंचेंगे। इसी बीचमें मार्गके दाहिने हाथ जो पत्थरका एक सुन्दर भवन बना है वही सारनाथके म्युज़ियमके नामसे प्रसिद्ध हैं। इसे पहिले न देखकर आप सारनाथके खंडहरोंको देखिये। "Startig Point-" लिखे हुए साइनबोर्डके पास वाला रास्ता पकड़कर चलनेसे ही आप अपनी बायीं ओर चन्द्राकार एक नीची जगह देखेंगे। इतिहासवेत्ता इसको "जगत्सिंह" स्तूप कहते हैं। पूर्व्व समयमें यहांपर ईंटोंसे बना हुआ एक बड़ा स्तूप था। केवल ईंट ले जानेके लिये महाराज चेतसिंहके दीवान बाबू जगत्सिंहने इसे संवत् १८५१ (सन् १७६४) में तुड़वाया और उसकी सामग्री बनारस ले गये। इसके बीचसे एक सुन्दर छोटासा हरे रंगके पत्थरका सन्दूक भी निकला था। जिस पत्थरके सन्दूकमें यह छोटा सन्दूक था वह अबतक कलकत्तेके अजायब घरमें रक्खा है। संवत् १९६५ (सन् १९०८ ईसवी) में श्री मार्शलने भी इसे खुदवाया और परीक्षा कर इस बातको स्थिर किया कि यह मूल स्तूप महाराजा अशोकके समय बना और फिर इसका संस्कार सात बार हुआ। इस बातमें कोई सन्देह नहीं कि यह

महाराज अशोक द्वारा निर्मित "धर्म्मराजिका" है। इसका अंतिम संस्कार "प्रधान मन्दिर" के साथ ग्यारहवीं शताब्दी (ईसवी) में हुआ था। विशेष आलोचनाके लिए परिशिष्ट (ख) देखिये। "जगत्सिंह" स्तूपके चारों ओर छोटे छोटे बहुतसे स्मृति-स्तूप टूटी अवस्थामें हैं। ये सब बौद्ध यात्रियों द्वारा भिन्न भिन्न समयमें बनवाये गये थे।

प्रधानमन्दिर और अशोक स्तम्भ

जगत्सिंह स्तूपको छोड़कर कुछ ही पद चलनेपर सामने उत्तरकी ओर "प्रधान मन्दिर" (Main shrine)का साइनबोर्ड देख पड़ता है। इस मन्दिरकी लम्बाई ६४ फुट और चौड़ाई भी उतनी ही है। इसके चारों ओरके कक्ष भी टूटी फूटी अवस्थामेंवर्त्तमान हैं। दक्षिण कक्षमें अशोकके समयकी एक पालिशदार पत्थरकी वेष्टनी (Railing) है। यह एक ही पत्थर काटकर बनायी गयी था, इसमें कोई जोड़ नहीं है। सम्भव है यह किसी समय अशोक स्तम्भके चारों ओर रही हो। "प्रधानमन्दिर" की दीवालकी चौड़ाई देख उसकी ऊंचाईका अनुमान किया जा सकता है। परिशिष्ट (ख) देखिये। यह तो निश्चय है कि इसका प्रधान द्वार पूर्वकी ओर था। पूर्वकी ओर एक बड़ा आंगन और बहिर्द्वार भी दिखलायी पड़ता है। "प्रधानमन्दिर" का जो भाग इस समय वर्त्तमान है उसके बनाये जानेका समय ग्यारहवीं शताब्दी माना जाता है। पुरातत्वविभाग (Archaeological Deptt) ने भी यही बात मानी है। हमारा विश्वास है कि यह पालवंशीय राजा महिपाल द्वारा "शैल-गन्धकुटी" रूपसे पुनः बनाया गया था। यह मन्दिर

इसके नीचे वाले एक और भी बड़े मन्दिरके ऊपर बना था। उसी बड़े मन्दिरकी बातका हुएन्-सङ्गने वर्णन किया है। इसी स्थानपर बुद्ध भगवान्‌ने बौद्ध धर्मके प्रचारका कार्य्य आरम्भ किया था। खनन-फलपर विश्वासकर यह अनुमान किया जाता है कि प्रधान मन्दिरके नीचे एक और भी इससे प्राचीन मन्दिर था और अशोक रेलिङ्ग और इसके बीचका स्तूप उसीके बीचमें था। भविष्यमें खोदनेसे सब विषय और भी परिष्कृत हो जायंगे। "प्रधानमन्दिर"-के चारों ओर बहुतसे छोटे छोटे स्तूप आदि हैं। "प्रधान-मन्दिर" के पश्चिमकी ओर पत्थरकी छतके नीचे अशोक स्तम्भका निचला भाग वर्त्तमान है। ऊपरके टूटे हुए टुकड़े 'प्रधानमन्दिर' के उत्तर-पश्चिमकी ओर बाहर रक्खे हैं। इन सबके ऊपरका चिकनापन देखने योग्य है। ये टुकड़े और सिंहयुक्त अशोकस्तम्भ प्रधानमन्दिरके पश्चिममें अलग स्थानपर मिले थे। बारहवीं शताब्दीके मुसलमानोंके आक्रमणसे यह टूटकर गिर पड़ा था। स्तंभ-शीर्ष म्युजियममें सुरक्षित है। स्तम्भके निचले भागपर जो लेख है उसका वर्णन छठे अध्यायमें हो चुका है।

अब अशोक स्तम्भको देखकर आप प्रधानमन्दिरके उत्तरपूर्व कोनेसे टेढ़ा-मेढ़ा, ऊंचा-नीचा रास्ता पकड़कर उत्तरकी ओर चलिये। आपके मार्ग-के दोनों ओर स्तूपादिके टूटे हुए भाग मिलेंगे।

विहार भूमि

म्युज़ियममें रक्खी हुई बहुतसी मूर्त्तियां और छोटे छोटे पत्थरके स्तूप यहीं पाये गये थे। इसीके उत्तरको ओर भिन्न भिन्न चार विहारोंके खंडहर मिले हैं। एक समय

इन्हींमें कितने भिक्षु और भिक्षुकियां वास करती थीं। मठ नम्बर एकमें कोठरियोंके नीचेकी भूमि, आंगन और एक कुआं भी वर्त्तमान है। इस विहारके पश्चिमकी ओर द्वितीय और पूरबकी ओर तृतीय विहार है। प्रथम विहार तो प्रायः ग्यारहवीं या बारहवीं शताब्दीका है और द्वितीय और तृतीय कुशानकालीन हैं। द्वितीय विहार जब टूटी फूटी अवस्थाको पहुंच चुका था और प्रथम विहार जगमगा रहा था उस समय उसमेंके रहने वाले भिक्षुओंने ध्यानार्थ एक सुरंग और एक मन्दिर बनाया था। परन्तु यह सब धरतीके नीचे ही था ऊपरसे कुछ भी दिखायी नहीं पड़ता था। सीढ़ीके सहारे इसमें नीचे जाते थे। सीढ़ियां ग्यारह हैं और ऐसा मालूम होता है कि अभी बनी हैं। इसे देख फिर आप पूरबकी ओर लौटिये और प्रथम विहारके आंगनमें होते हुए सीढ़ीपर चढ़, खड़े हो, पूरबकी ओर देखेंगे तो उसी तृतीय विहारका पश्चिम दक्खिनी भाग आपको दिखायी पड़ेगा। वहांसे उतर इसके दक्षिण वाली बाहरी दीवालके बगलसे होते हुए, उत्तरको ओर मुख करके आप इसके आंगनमें प्रवेश करें तो सामने आपको दो खम्भे दिखलायी पड़ेंगे। ये निज स्थानपर खड़े हैं। अबतक भी भिक्षू तथा भिक्षुकियोंके वासगृह वर्त्तमान हैं। इसके एक द्वारके ऊपर लकड़ी लगी है। यह प्राचीन नहीं है, प्रत्युत पुरातत्वविभाग द्वारा लगायी गयी है। यहांपर खोदाई करते समय प्राचीन लकड़ीके चिन्ह वर्त्तमान थे। परन्तु उनकी हीनावस्था देख वे निकाल दी गयीं और वर्त्तमान लकड़ी संवत् १६६५ (सन् १६०८)में लगायी गयी। इसे देख आप धीरे धीरे

ऊपरकी ओर बढ़ें तो कुछ ही दूरीपर पूर्वकी ओर आपको चतुर्थ विहार दिखायी पड़ेगा। यह भी द्वितीय और तृतीय विहारका समकालीन है। इसकी कोठरियां बहुत टूटी फूटी हैं। अभी यह पूर्ण रूपसे खोदा नहीं गया है। केवल उत्तर और पूर्वका प्रायः आधा ही भाग खुदा है। इन कोठरियोंके सामने लम्बा दालान फिर आंगनका भाग वर्तमान है। इसमें भी छतको सम्हालने वाले खम्भे खड़े हैं। ये ऐसी ही अवस्थामें पाये गये थे केवल दो तीन खंभे जो पड़े मिले थे फिर खड़े कर दिये गये हैं। इन्हें देख आप दक्षिणको चलिये। कुछ ही दूर चलनेपर आपको सामने छोटे छोटे पत्थरके बने स्तूप दिखायी पड़ेंगे। ये भी अन्यान्य स्तूपोंकी भांति यात्रियों द्वारा बनवाये गये हैं। इनके बीचमें राख भी मिली थी, परन्तु किसकी थी यह न जानकर वह फिर वहीं दबा दी गयी और स्तूप पहिलेके सदृश खड़े कर दिये गये। यहांपर एक पत्थरकी सीढ़ी है और इससे लगाहुआ एक चबूतरा प्रायः सात आठ फुट चौड़ा और १६० फुट-लम्बा "प्रधान मन्दिर" के मुख्य मार्गके बीच एक "चंक्रम-पथ" (जिसपर भिक्षुगण ध्यानके उपरान्त टहलते थे) वर्त-मान है। यहांपर इन छोटे छोटे पत्थरके स्तूपोंको छोड़कर ईंटोंसे बने हुए स्तूपोंके चिन्ह भी पाये जाते हैं। एक छोटा सा मन्दिर भी इनके दक्षिणकी ओर बना था, जिसका ऊपरी भाग नष्ट हो गया है। इस मन्दिरमें कदाचित् बाराही (मरीचि) देवीकी मूर्ति थी कारण उस मूर्तिकी केवल चौकी निज स्थानपर स्थित है। मूर्ति नहीं मिली। इस स्थानको छोड़ आप जब ऊपर आते हैं तो आपको एक बड़ा भारी स्तूप देख पड़ता है। इसे "धामेकस्तूप" कहते हैं।
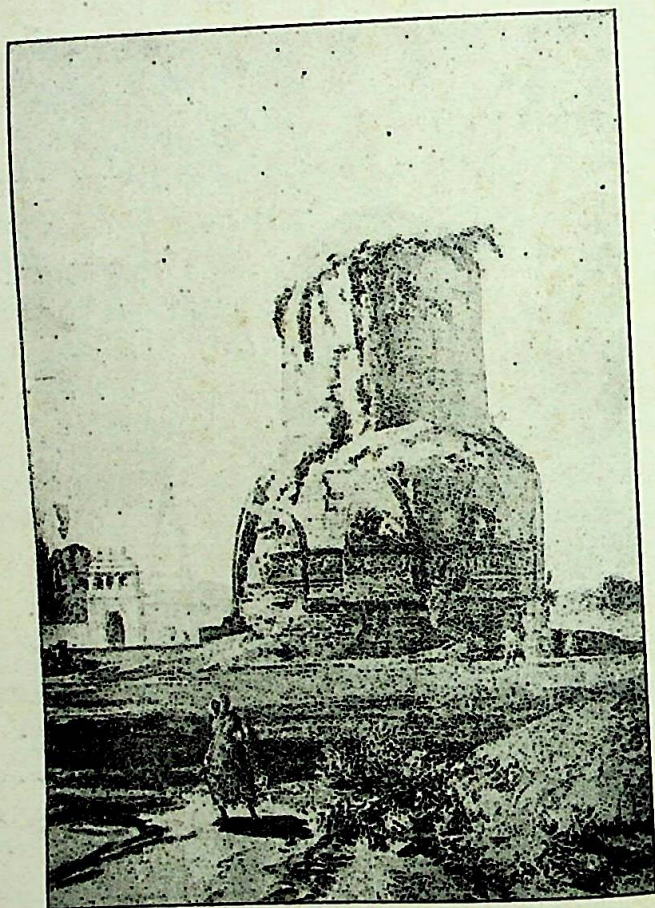
धामेक स्तूप (पृ० १६५)

"धामेकस्तूप" आधुनिक खनन-कार्य्यके पहिलेसे ही वर्तमान था । "धामेक" शब्द डाक्टर वेनिस-

धामेक स्तूप ।

के मतसे संस्कृतके "धर्म्मेक्षा" (Pondering of the land) शब्दसे उत्पन्न हुआ है। स्तूप दूरसे देखनेसे ठीक शिवलिङ्गके सदृश दिखलायी पड़ता है। क्या महायानी लोग शिवलिङ्गके सदृश स्तूप बनाते थे? यह स्तूप विल्कुल ठोस है । बीचमें खाली नहीं है। इसकी ऊँचाई १०४ फुट और नीचेका व्यास ९३ फुट है।धरतीके नीचेका भाग ३७ फुट गहिरे तक कीलोंसे जड़े हुए पत्थरोंका बना है। ऊपरका सब भाग ईटोंसे बना है और आधेसे कुछ कम नीचेके भागमें आठ बड़े बड़े ताख हैं। पूर्व्व समयमें इनमें मूर्तियां रखी थीं क्योंकि अबतक उनकी चौकियां वर्तमान हैं। स्तूपके निचले भागपर अनेक प्रकारकी चित्रकारियां शोभा दे रही हैं । दक्षिणकी ओर कमलपर बैठा एक मनुष्य है, उसके बगलमें दो हंस और एक छोटा सा मेढक भी दिखलायी पड़ता है। मनुष्यके हाथों-में कमलदंड भी वर्तमान है । स्तूपके पश्चिम वाली चित्र-कारी भारतकी प्राचीन शिल्पविद्याकी श्रेष्ठता प्रकटकर रही है। साहेब लोगोंने इसकी शतमुखसे प्रशंसाकी है । (१) सिंहलद्वीपके शिल्पियोंने free hand नामक चित्रकारीके काममें जो शिल्परीति ग्रहणकी है इस नकशेमें वही पद्धति

(१) "The intricate scrol work on the western face is one of the most successful example of the decoration of a large wall surface formed in India..." Smith's "A History of fine Art in India and Ceylon." p. 168.

पायी जाती है । विन्सेण्ट स्मिथका यह अनुमान है कि "धामेक स्तूप" के इस भागकी चित्रकारीने सिंहल रीतिका अनुसरण किया है । समानता देखकर यह कहना कठिन है कि किसने किसका अनुकरण किया है । शिल्प-प्रणालीके प्रमाणसे यह चित्रकारी सातवीं शताब्दीकी स्थिर की गयी है । सम्भव है उसी समय स्तूप भी बना हो । संवत् १८९२ (सन् १८३५ ई०) में जेनरल कनिङ्घम साहेबने इसके बीचों बीचमें एक कुआं खोदवाकर उसमेंसे सातवीं शताब्दी-का एक लेख भी पाया था । उस खोदाईमें इस स्तूपके सबसे नीचे पहुंचनेपर कनिङ्घम साहेबने महाराजा अशोकके समय-की ईंट भी पायी थीं । इससे यह अनुमान करना असङ्गत न होगा कि प्राचीनतर मूल स्तूपके चारों ओर क्रमशः अनेक संस्कारों द्वारा यह स्तूप इतना बड़ा हो गया ।

अस्थायी कौतुकालय ये ।

धामेकस्तूपको देखकर आप ठीक पश्चिमकी ओर जैन मन्दिरकी उत्तरी दीवालके बगलसे चलिये । जब आप इस जैन मन्दिरके पश्चिमो-त्तर कोनपर पहुंचेंगे तो आपको बायें हाथकी ओर एक छतदार खुला घर देख पड़ेगा । इस घरमें बहुतसी हिन्दू मूर्तियां और कुछ जैन मूर्तियां भी हैं। जिस समय श्री अटल इस स्थानपर खोदाई कराने आये थे उसी समय यह घर उन मूर्तियोंको रखनेके लिये बनवाया गया था जो उस खनन-कार्य्यसे निकलीं । परन्तु बहुत मूर्तियोंके निक-लनेपर वर्तमान बड़ा कौतुकालय (म्युजियम) बना । इस खुले घरकी मूर्तियोंके परिचय करानेकी आवश्यकता नहीं है, क्योंकि इन्हें तो प्रायः सभी हिन्दू जानते हैं और ये यहांसे मिली भी नहीं हैं ।

खुले घरको मूर्तियोंको देख धीरे धीरे आप दक्षिणकी
वर्तमान कौतुकालय ओर चलकर वर्तमान कौतुकालय (म्युजियम) में प्रवेश करेंगे। म्युजियमके प्रधान घरमें पहिले जानेसे प्राचीनतम मूर्तियां दिखाथी पड़ेंगी। इस घरमें प्रवेश करते ही चारो सिंहयुक्त अशोक स्तम्भके शिखर नजर पड़ते हैं। उसके उत्तरकी ओर कनिष्कके समयकी लाल पत्थरकी बनी बोधिसत्वकी मूर्ति वर्तमान है। उत्तरकी दीवारसे लगी हुई पश्चिम कोनेमें तो महाबीर (शिव) की दस भुजावाली मूर्ति और पूर्वके कोनेमें वोधिसत्त्व मूर्तिका छत्र है। पूव दिशाकी दीवालसे लगी हुई धम्मचक्रप्रवतंननिरत बुद्ध मूर्ति है। इसके बाद आप दक्षिणके घरमें प्रवेश कीजिये। इसमें गुप्त समयसे लेकर बारहवीं शताब्दी तककी बोधिसत्व, बुद्ध, तारा आदि बहुतसी मूर्तियां रखी हैं। इसके भी दक्षिणवाले कमरेमें चित्र फलक, स्तम्भशीर्ष, छोटे छोटे स्तूपादि दीख पड़ते हैं। चित्रफलकपर बुद्ध भगवान्‌का जोवन चरित्र अंकित है। इन सब घरोंकी वस्तु देखकर आप पश्चिमके दालान (Verandah) में आइये। इसमें पत्थरके बड़े बड़े टुकड़े रखे हैं। उत्तरवाले घरमें मिट्टीके बने कलश, पात्र, लिपियुक्त ईंट इत्यादि सामग्री देख पड़ेगी, बड़े बड़े घड़े, मोहर, कण्ठी इत्यादि बहुत सी चीजें हैं। इनमेंसे प्रधान प्रधान दृश्योंका विवरण प्रथम अध्यायमें हो चुका है।

परिशिष्ट (क)।

मुद्राएँ बौद्ध मूर्ति, तत्वका एक प्रधान और जानने योग्य विषय है। (A. Foucher, Iconographic Boudhique, Paris, 1900 pago 68 etc.)

अभयमुद्रा—(अभयदान) आश्रयदानका आकार। इस अवस्थाकी मूर्तिका दाहिना हाथ दाहिने कन्धे तक उठा हुआ रहता है। हथेली सामनेकी ओर होती है। बाएँ हाथसे (संघाटी) वस्त्र पकड़े रहनेका नियम है। बैठी हुई और खड़ी दोनों विधिकी मूर्तियोंमें यह मुद्रा पायी जाती है। कुशानयुगकी मूर्तियोंमें विशेषकर यही मुद्रा पायी जाती है।

वरदमुद्रा—वर देनेके समयका आकार। इस मुद्राका केवल यही लक्षण है कि मूर्तिका दाहिना हाथ नीचेकी ओर पूरी तौरपर लटका रहता है और हथेली सामने दिखलायी पड़ती है। यह मुद्रा केवल खड़ी मूर्तियोंमें पायी जाती है। हिन्दुओंको इस मुद्राके सम्बन्धमें विशेष कहनेकी आवश्यकता नहीं क्योंकि अधिकांश देव-देवियोंकी मूर्तियां इसी मुद्रामें होती हैं।

ध्यानमुद्रा—इस आकृतिमें मूर्त्तिके दोनों हाथ एक दूसरे पर रक्खे हुए पलत्थी पर रहते हैं। यह मुद्रा केवल बैठी ही मूर्त्तिमें पायी जाती है।

भूमिस्पर्श मुद्रा—इस आकारके साथ बौद्ध पुराणोंका विशेष सम्बन्ध है। जिस समय बुद्धभगवान् 'मार' द्वारा अनेक प्रकारसे आक्रान्त हुए, उस समय उन्होंने अपने पहि-

लेके जन्मोंके कर्त्तव्यकी साक्षी देनेके लिए वसुमती (वसु-न्धरा) को बुलाया। इसी मुद्रामें बुद्ध भगवा-न्का हाथ भूमिस्पर्श कर रहा है और साथ ही साथ वसु-मती देवी भी धरतीसे निकल रही हैं। मारके पराजित हो जानेके पीछे बुद्ध भगवान् ने सम्बोधि-लाभ किया। इसी कारणसे बुद्ध भगवान्के सम्बोधि प्राप्त होनेका परिचय देनेके निमित्त यह मुद्रा प्रचलित हुई। बुद्धगयाके मन्दिरकी मूर्त्ति भी इसी मुद्राकी बनी है। Sarnath B (b) 175, B (c) 2 इत्यादि। इस मुद्राका दूसरा नाम बज्रासन है। शक्ता-नन्द तरङ्गिणीमें इसका लक्षण इस भांति है।—

"उच्चैः पादौ क्रमान्न्य स्यंत् कृत्वा प्रत्यङ्मुखाङ्गुली।
करौ निदध्यादाख्यातं वज्रासन मनुत्तमं॥"

धर्म्मचक्रमुद्रा—मूर्त्तिके दोनों हाथ सामने छातीपर स्थापित होते हैं। दाहिने हाथकी तर्जनी और वृद्धाङ्गुली संयुक्त हो बायें हाथको दो मध्यमाङ्गुलियों द्वारा पृष्ट होती है। इस मुद्रामें बुद्धमूर्त्ति बैठी होती है। [See figure B (b) 181] श्रावस्तीमें भी बुद्धभगवान् अलौकिक व्यापार दिखलाते हुए इसी मुद्रामें बैठे थे।

परिशिष्ट (ख)

सारनाथके ऐतिहासिक निर्देशनोंका भौगोलिक परिचय

सारनाथके तीन प्राचीन निर्देशनोंके स्मारक चिन्होंके सम्बन्धमें ऐतिहासिकोंमें अनेक प्रकारके मत हैं। अबतक किसी स्थिर सिद्धान्तके अभावसे पुरातत्त्वज्ञोंने इस विषयकी चर्चा

केवल संदिग्ध दृष्टिसे ही की है। इसी कारण इसकी आलोचना फिरसे यहां की जाती है। स्थिर-सिद्धान्तको न पहुंच कर भी यदि कोई नयी बात उत्पन्न हो तो हमारा विश्वास है कि वह भविष्यकी आलोचनाको अवश्य सहायता देगी। सारनाथके खनन-फलसे तीन ऐतिहासिक दृष्टान्त प्राप्त हुए हैं। (१) अशोक-स्तम्भ, (२) जगत्‌सिंह स्तूप, (३) प्रधान मन्दिर (main Shrine) इन तीनोंके दो प्राचीन विवरण पाये जाते हैं। (१)हुयेन सङ्गका विवरण(२) महीपाल लिपिका विवरण। हुयेन सङ्गके विवरणमें इन तीनोंकी अविकृत अवस्थाका वर्णन है। महीपालके लेखसे इनकी टूटी फूटी अवस्थाके जीर्णोद्धार करानेकी बात पायी जाती है। इस समय हुयेन संग वर्णित तीनों निदर्शनोंके साथ वर्त्तमान समयमें निकले हुए तीनों निदर्शनोंकी समानता दिखलानेकी बड़ी आवश्यकता है। हुयेन सङ्गके वर्णनके साथ महीपालकी लिपिकी एक वाक्यता दिखलाकर वर्त्तमान तीनों निदर्शनोंके साथ उसकी तुलना करनेकी किसीने भी चेष्टा नहीं की। देखें, इसकी समानता (equation) सम्भव है या नहीं।

जब यह देखा जाता है कि 'हुयेनसङ्ग'के वर्णन किये हुए निदर्शन अब भी पाये जाते हैं तब यह अनुमान किया-जा सकता है कि महीपाल द्वारा सारनाथके विस्तृत संस्कार कालमें भी वे वर्त्तमान थे। सबसे पहिले 'हुयेनसङ्ग' के सारनाथ-वर्णनका आवश्यक अंश समझना चाहिये।

'हुयेन संगने लिखा है "× × × वरणा नदीके उत्तपूर्व १० 'लि' की दूरी पर 'लूए' (मृगदाव) नामक संघाराम है। यह

आठ भागोंमें विभक्त है और चारों ओर दीवालसे घिरा है इस स्थानपर हीनयान सम्मितिके मतावलम्बी १५०० भिक्षू रहते हैं। इस चहारदीवारीके बीचमें ५०० फुट ऊंचा एक विहार है। इस विहारकी दीवाल पत्थरकी बनी है, किन्तु ऊपरी भाग ईंटोंसे बना है × × × विहारके दक्षिण पश्चिमकी ओर राजा अशोक द्वारा बनवाया हुआ एक पत्थरका स्तूप है, जो दीवालके धरतीके नीचे दबो होने पर भी अबतक १०० फुट ऊंचा है। इसके सामने ७० फुट ऊंचा एक शिलास्तम्भ है। स्तम्भका पत्थर स्फटिकके सदृश उज्वल है...। इसी स्थानपर बुद्ध भगवान् ने धर्म्मचक्र प्रवर्तन किया था" (१)

अब हम हुयेन संग वर्णित ऐतिहासिक निदर्शनोंके साथ खोदाईमेंसे निकले हुये निदर्शनोंकी समानता दिखलानेकी चेष्टा करेंगे। चीन देशीय परिव्राजकके विवरणसे जाना जाता है कि उन्होंने पहिले सारनाथके आठ भागवाले महा विहारमें पूरबकी ओरसे प्रवेश किया और हीनयानीय भिक्षुओंको देखा, पूर्व्वकी ही ओरसे २०० फुट ऊंचे मूल विहाहारमें प्रवेश किया। इसी विहारके स्थानपर ही पालराजाके समयका प्रधानमन्दिर (Shrine) बना था। इस विहारका प्रधान मुँह पूरबकी ओर था, यह बात उसे देखनेसे ही मालूम हो जाती है। हुयेनसङ्ग इस मन्दिरको अपनी दाहिनी ओर रखते हुए दक्षिण पश्चिमकी ओर चलकर

---

(१) Beal's Buddhist record of the western wolrd vol II P. 45. Beal's "Life of Hieun Thsang" P. 99. इसमें भी विहारका १३४ फुट होना लिखा है। Watten's "on Yuan chwang's travels" Val II P. 50.

अशोक द्वारा बनवाये गये पत्थरके स्तूपके पास पहुंचे । इसी स्तूपको वर्त्तमान समयमें 'जगत्सिंह स्तूप' कहते हैं । पुरातत्त्व वेत्ताओंने भी यही स्थिर किया है । सर जॉन मार्शलने भी "जगत्सिंह" स्तूपको अशोक कालीन माना है । (२) इसके उपरान्त चीन यात्रीने इस स्तूपको अपने दाहिने रख ठीक उत्तरकी ओर स्फटिकके समान उज्वल अशोक स्तम्भको देखा था । अशोकस्तम्भ अब तक भी 'जगत्सिंह-स्तूप'के उत्तर और प्रधानमन्दिरके पश्चिमकी ओर टूटी हुई अवस्थामें वर्त्तमान है । "सर जान मार्शल यह न समझ सके कि हुयेन सङ्गके कथनानुसार 'स्तम्भ' स्तूपके सम्मुख किस भांति हो सकता है ।"

"Again, if this is the column referred to by Hiuen Tsiang where is the stupa rin front of which it stood ?"

महामान्य मार्शल साहेब अबतक यह नहीं स्वीकार करते कि हुयेन सङ्ग वर्णित और वर्तमान अशोक स्तम्भ अभिन्न हैं । डाक्टर वोगलने उनकी प्रायः सब आपत्तियोंका खंडन किया है । (३) आश्चर्यका विषय है कि सुप्रसिद्ध विन्सेन्ट स्मिथने भी स्पष्ट अक्षरोंमें लिख दिया हैं कि हुयेनसङ्ग वर्णित और वर्तमान अशोक स्तम्भ एक ही है ।—

---

(२) Guide to the Buddhist Ruins of Sarnath by D. R. Sahni Esq M. A. P. 9.

(३) Introduction to the Sarnath museum Catalogue by Dr. Vogel, page 6.

" Only two of the ten inscribed pillars known, namely those at Rumindei and Sarnath, can be identified certainly with monuments noticed by Hieun Tsang "— (४)

चीनी परिव्राजकके सारनाथमें आनेके बहुत वर्षोंके पीछे संवत् १०८३ (सन् १०२६ ईसवी) में सारनाथ-जीर्ण-संस्कारसूचक महीपालकी एक लिपि खोदी गयी। उसकी वर्णनासे आलोच्य तीन प्राचीन निदर्शनोंके सम्बन्धमें बहुत कुछ जाना जाता है।

लिपिमें है- × × " तौ धर्म्मराजिकां सांगं धर्मचक्रं पुनर्णवं कृतवन्तौ च नवीनामष्ट महास्थान शैल गन्धकुटीं" (५)

अर्थात् उन्होंने (स्थिरपाल और वसन्तपालने) "धर्म्म-राजिका" एवं "साङ्ग धर्म्मचक्र'का" जीर्ण-संस्कार कराया और अष्ट महास्थान शैल गन्धकुटीको नये सिरसे बनवाया।

हुयेन सङ्गके वर्णनके साथ एकवाक्यता रख अब यह जानना चाहिये कि ये "धर्म्मराजिका" "धर्म्मचक्र" और "अष्टमहास्थान शैल गन्धकुटी" कौन २ हैं।

"धर्म्मराजिका"---डाक्टर वोगल साहेबने वर्तमान धामेक स्तूपको "धर्म्मराजिका" माना था, किन्तु डाक्टर वेनिसके "धामेक" शब्दका अर्थ "धर्मेक्षा" जान उन्होंने अपने अनुमान-को छोड़ दिया। धामेकस्तूप गुप्त कालीन है, अशोक कालीन

(४) Asoka (Second Edition) p. 124.

(५) सारनाथका इतिहास अध्याय । ५

नहीं। धर्म्मराजिका शब्दका ही अर्थ अशोकस्तूप है । (६) "जगत्सिंह स्तूप" पहिले ही अशोक कालीन कहा जा चुका है। अतएव "धर्म्मराजिका" शब्द ही जगत्सिंह स्तूपको बतलाता है। फा-हियानके भ्रमण-विवरणसे भी जाना जाता है कि जिस स्थानपर पञ्चवर्गीयगणने बुद्ध भगवान्को नमस्कार किया था उस स्थानपर उन्होंने एक स्तूप देखा था और उसीके उत्तर धर्म्मचक्रप्रवर्तनका विख्यात स्थान था (७)

धर्म्मचक्र—महीपालकी लिपिमें "साङ्ग धर्म्मचक्र" लिखा है। डा० वोगलने 'साङ्ग' शब्दका अर्थ 'समग्र' (Complete) किया है। डा० वेनिसने भी इसी मतको माना है। यह विचारनेका विषय है 'साङ्ग' शब्द विहारके साथ हो सकता है कि नहीं। "साङ्गवेद" कहनेसे षडंग वेद समझा जाता है। उसी तरह "साङ्ग धर्म्मचक्र" कहनेसे 'विविध अंगके साथ वर्त्तमान चक्र' का बोध होता है। अब यह जानना है कि "धर्म्मचक्र" कहनेसे क्या समझमें आता है। बुद्धभगवान्ने सारनाथमें "धर्म्मचक्र प्रवर्तन" किया यह तो मालूम ही है, पीछेसे "धर्म्मचक्र" चिन्ह—चक्र चिन्ह 'धर्म्मचक्र' मुद्रा, इतना ही नहीं, सारनाथ विहार तक "धर्म्म-

(६) "84,000 Dharmarajikas built by Asoka Dharmaraja, as stated by Divyavadana (Ed: Cowell V. N. cil, p. 379) quoted by Fouchen Iconographic Bouddhique P. 55 n.) In the M. S. miniature.

(७) The Pilgrimage of Fahian (Trans. by I. W. Laidlay) P. 307-08.

चक्र" विहार कहलाता था। (८) सारनाथकी एक मिट्टीकी मुहर (Seal) पर भी खुदा है "श्री धम्मंचक्रे श्री मूलगन्ध कुट्यां भगवतो। (९) इससे भी यह विदित हो जाता है कि समग्र विहारको तो धम्मंचक्र और उसके बीचकी एक कुटी-को मूलगन्ध कुटी (main shrine) कहते थे। इससे भी अनुमान होता है कि नाना अंशोंके साथ वर्त्तमान समग्र संघाराम ही "साङ्ग धर्म्मचक्र" नामसे वर्णित हुआ है। फिर श्रीयुत अक्षय कुमार मैत्र महाशयके मतसे अशोक स्तम्भके ऊपरके भागपर जो एक 'धम्मचक्र" चिन्ह था और जो अब भी टूटी अवस्थामें सारनाथके म्युजियममें वर्त्तमान है (१०) वही महिपाल लिपिमें "साङ्ग धर्म्मचक्र" कहा गया है। अशोक स्तम्भके ऊपरके भागपर इस प्रकार धर्म्मचक्र रहनेकी व्यवस्था साञ्चीके स्तम्भसे प्रकट होती है। तब जीर्ण संस्कार किसका हुआ था—क्या समग्र विहारका या अशोक स्तम्भका ? इसके उत्तरका कोई उपाय नहीं, "धर्म्म राजि-का" के संस्कारके साथ साथ सब विहारका संस्कार होना कोई आश्चर्य्यकी बात नहीं क्योंकि सभीकी दशा शोचनीय होगयी थी। दोनों पाल भाइयोंने सबका संस्कार-कार्य्य

---

(८) कुमरदेवीकी प्रशस्तिमें सारनाथको "सद्धर्म्मचक्रविहार" कहा है। सारनाथका इतिहास अध्याय ६

(९) Hargreave's Annual Progress Report for 1915 page 4.

(१०) Sir John Marshall's Annual Report 1904—5 page 36.

हाथमें लिया था। अशोक स्तम्भका संस्कार सूचक कोई चिन्ह नहीं है, यह भी ध्यान देने योग्य बात है।

अष्टमहास्थान शैलगन्धकुटी–डाक्टर हुल्स, वोगल और वेनिसने इस विषयपर भिन्न भिन्न मत प्रगट किये हैं। डाक्टर वेनिसकी व्याख्या सबसे पीछेकी है। उनके पीछे इस विषयपर फिर किसीने कुछ नहीं लिखा। उन्होंने पाण्डित्यपूर्ण युक्तियोंके साथ दिखलाया है कि "आठों महास्थानोंसे लाये हुये पत्थर की गन्धकुटी.. ऐसा इसका सारांश निकालनेपर भी भूल रह जाती है। इसकी व्याख्या इस भांति "The Shrine is made of stone, and in the shrine are or to it belong eight great places (positions)" (११) अर्थात् मन्दिर पत्थरसे बना है; और उसमें या उससे सम्बद्ध आठ बड़े स्थान थे। संस्कृत व्याकरणके अनुसार इसे मध्यपदलोपी कर्म्मधारय छोड़ और कुछ कहनेका उपाय नहीं है। ऐसा होनेसे व्यास वाक्य इस भांति होगा "अष्टमहास्थान स्थिता शैलगन्धकुटी"। अब हम अपना मत लिखते हैं। इस बातकी व्याख्या किसी मतसे भी सन्तोषजक नहीं हुई ऐसा बार बार सुनायी पड़ता है। (१२) "शैलगन्धकुटी" कहनेसे वर्तमान समयके 'प्रधान मन्दिर (main shrine) का बोध होता है। इस मन्दिरकी निर्माणप्रणाली और टूटी अवस्थासे बारहवीं शताब्दीके चिन्हादि पाये जाते हैं। 'गन्धकुटी" शब्दकी चर्चा पहिलेही हो चुकी है (१३) और मिट्टी की मुहर (seal) में "श्रीसद्ध-

(११) I. A. S. B., New Series Vol: II NO 9 P. 447.

(१२) हारग्रीव साहेबने मुझे पत्र लिखा है कि इसकी व्याख्या अभी बहुत दिनों तक सन्देह जनक रहेगी।

(१३) सारनाथका इतिहास अ० ६।

र्म्मचक्रे मूल गन्धकुट्यां भगवतो" अर्थात् "सद्धर्म्मकी मूल गन्धकुटीमें" पाया गया है। इस लिपिका समय महिपाल-की लिपिके समयसे वहुत पहलेका है। इससे विदित होता है कि धर्म्मचक्रविहार या समग्र विहार और गन्धकुटी इन दोनोंका सम्बन्ध पहिलेसे ही चला आता था। वुद्धभगवान्के परवर्तीकालमें उनके रहनेके घरके चारों ओर एक बड़ा विहार बना था। उसी वासभवनको "गन्धकुटी" कहते और समस्त विहारको नाना नामसे परिचित करते थे अब हुयेन सङ्गका वर्णन पुनः मिलाया जाय। उसमें देखा जाता है कि उनने भी समग्र विहारको देखा था और एक शैल कुटी भी देखी थी। उसमें वुद्धमूर्ति वर्तमान थी। हुयेन सङ्गने इस वात पर कि यह संघाराम आठ भागमें विभक्त था बड़ा जोर दिया है हमारी समझमें यह आता है कि संघारामके येही आठों अंश क्रमसे आठ बड़े स्थानों, "खाने" वा विहारमें बदल गये। फिर इसी आठ भाग वाले संघारामको "अष्टममहास्थान" कहने लगे आश्चर्यका विषय है कि वर्तमान खनन-कार्य्यसे केवल छः विहार स्पष्ट रूपसे पाये गये हैं। प्रत्नतत्व विभागके किसी सुपरिण्टेन्डेन्टने मुझसे कहा है कि पूरबकी ओर और भी विहारके चिन्ह धरतीके नीचे दबे पड़े हैं। उस ओर अभी तक खोदाई नहीं हुई है इस लिये मेरा यह सिद्धान्त है कि "अष्ट महास्थान" से समग्र संघाराम समझना चाहिये और "शैलगन्ध कुटी" कहनेसे संघाराममें की प्राचीन पत्थरसे बनी हुई कुटीका अर्थ ग्रहण करना चाहिये।

शब्दानुक्रमणिका